वात्स्यायन का कामसूत्र हिन्दी में

भाग 1 साधारणम्

अध्याय 1 शास्त्रसंग्रहः

श्लोक (1)- धर्मार्थकामेभ्यो नमः।।

अर्थ- मै धर्म, अर्थ और काम को नमस्कार करने के बाद में इस ग्रंथ की शुरुआत करता हूं।

भारतीय सभ्यता, संस्कृति और साहित्य का यह बहुत पुराना चलन रहा है कि ग्रंथ की शुरुआत, बीच और अंत में मंगलाचरण किया जाता है। इसके बाद आचार्य वात्सायन ने ग्रंथ की शुरुआत करते हुए अर्थ, धर्म और काम की वंदना की है। दिए गए पहले सूत्र में किसी देवी या देवता की वंदना मंगलाचरण द्वारा न करके, ग्रंथ में प्रतिपाद्य विषय- धर्म, अर्थ और काम की वंदना को महत्व दिया है। इसको साफ करते हुए आचार्य वात्साययन नें खुद कहा है कि काम, धर्म और अर्थ तीनों ही विषय अलग-अलग है फिर भी आपस में जुड़े हुए है। भगवान शिव सारे तत्वों को जानने वाले हैं। वह प्रणाम करने योग्य है। उनको प्रणाम करके ही मंगलाचरण की श्रेष्ठता पाई जा सकती है।

जिस प्रकार से चार वर्ण (जाति) ब्राहमण, शुद्र, क्षत्रिय और वेश्य होते हैं उसी प्रकार से चार आश्रम भी होते हैं- धर्म, अर्थ, मोक्ष और काम। धर्म सबके लिए इसलिए जरूरी होता है क्योंकि इसके बगैर मोक्ष की प्राप्ति संभव नहीं है। अर्थ इसलिए जरूरी होता है क्योंकि अर्थोपार्जन के बिना जीवन नहीं चल सकता है। दूसरे जीव प्रकृति पर निर्भर रहकर प्राकृतिक रूप से अपना जीवन चला सकते हैं लेकिन मनुष्य ऐसा नहीं कर सकता है क्योंकि वह दूसरे जीवों से बुद्धिमान होता है। वह सामाजिक प्राणी है और समाज के नियमों में बंधकर चलता है और चलना पसंद करता है। समाज के नियम है कि मनुष्य गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता है तो सामाजिक, धार्मिक नियमों में बंधा होना जरूरी समझता है और जब वह सामाजिक-धार्मिक नियमों में बंधा होता है तो उसे काम-विषयक ज्ञान को भी नियमबद्ध रूप से अपनाना जरूरी हो जाता है। यही कारण है कि मनुष्य किसी खास मौसम में ही संभोग का सुख नहीं भोगता बल्कि हर दिन वह इस क्रिया का आनंद उठाना चाहता है।

इसी ध्येय को सामने रखते हुए आचार्य वात्स्यायन ने काम के सूत्रों की रचना की है। इन सूत्रों में काम के नियम बताए गए है। इन नियमों का पालन करके मनुष्य संभोग सुख को और भी ज्यादा लंबे समय तक चलने वाला और आनंदमय बना सकता है।

आचार्य वात्स्यायन ने कामसूत्र की शुरुआत करते हुए पहले ही सूत्र में धर्म को महत्व दिया है तथा धर्म, अर्थ और काम को नमस्कार किया है।

श्लोक (2)- शास्त्रो प्रकृतत्वात्।।

अर्थ- आचार्य वात्स्यायन ने काम के इस शास्त्र में मुख्य रूप से धर्म, अर्थ और काम को महत्व दिया है और इन्हे नमस्कार किया है। भारतीय सभ्यता की आधारशिला 4 वर्ग होते हैं- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मनुष्य की सारी इच्छाएं इन्ही चारों के अंदर मौजूद होती है। मनुष्य के शरीर में जरूरतों को चाहने वाले जो अंग हो यह चारों पदार्थ उनकी पूर्ति किया करते हैं।

इसके अंतर्गत शरीर, बुद्धि, मन और आत्मा यह 4 अंग सारी जरूरतों और इच्छाओं के चाहने वाले होते हैं। इनकी पूर्ति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष द्वारा होती है। शरीर के विकास और पोषण के लिए अर्थ की जरूरत होती है। शरीर के पोषण के बाद उसका झुकाव संभोग की ओर होता है। बुद्धि के लिए धर्म ज्ञान देता है। अच्छाई और बुराई का ज्ञान देने के साथ-साथ उसे सही रास्ता देता है। सदमार्ग से आत्मा को शांति मिलती है। आत्मा की शांति से मनुष्य मोक्ष के रास्ते की ओर बढ़ने का प्रयास करता है। यह नियम हर काल में एक ही जैसे रहे हैं और ऐसे ही रहेंगें। आदि मानव के युग में भी शरीर के लिए अर्थ का महत्व था। जंगलों में रहने वाले कंद-मूल और फल-फूल के रूप में भोजन और शिकार की जरूरत पड़ती थी। संयुक्त परिवार कबीले के रूप में होने के कारण उनकी संभोग संबंधित विषय की पूर्ति बहुत ही आसानी से हो जाती थी। मृत्यु के बाद शरीर को जलाया या दफनाया इसीलिए जाता था ताकि मरे हुए मनुष्य को मुक्ति मिल सके। इस प्रकार अगर भोजन न किया जाए तो शरीर बेजान सा हो जाता है। काम (संभोग) के बिना मन कुंठित सा हो जाता है। अगर मन में कुंठा होती है तो वह धर्म पर असर डालती है और कुंठित मन मोक्ष के द्वार नहीं खोल सकता। इस प्रकार से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष एक-दूसरे से पूरी तरह जुड़े हुए हैं। बिना धर्म के बुद्धि खराब हो जाती है और बिना मोक्ष की इच्छा किए मनुष्य पतन के रास्ते पर चल पड़ता है।

बुद्धि के ज्ञान के कारण समवाय संबंध बना रहता है। जैसे ही ज्ञान की बढ़ोतरी होती है वैसे ही बुद्धि का विकास भी होता जाता है। अगर देखा जाए तो बुद्धि और ज्ञान एक ही पदार्थ के दो हिस्से हैं।

जिस तरह से बुद्धि और ज्ञान एक ही है उसी तरह धर्म और ज्ञान भी एक ही पदार्थ के दो भाग है क्योंकि ज्ञान के बढ़ने से धर्म की बढ़ोतरी होती है। धर्म के ज्ञान में जितना भाग मिलता है तथा ज्ञान के अंतर्गत धर्म का जितना भाग पाया जाता है उसी के मुताबिक बुद्धि में स्थिरता पैदा होती है।

बुद्धि का संबंध जिस तरह से धर्म से है उसी तरह शरीर का अर्थ से संबंध है, मन का काम से संबंध है और आत्मा का मोक्ष का संबंध है। इन्ही अर्थ, धर्म, काम में मनुष्य के जीवन, रति,

मान, ज्ञान, न्याय, स्वर्ग आदि की सारी इच्छाएं मौजूद रहती है। अर्थ यह है कि जीवन की इच्छा अर्थ में स्त्री, पुत्र आदि की, काम में यश, ज्ञान तथा न्याय की, धर्म और परलोक की इच्छा मोक्ष में समा जाती है।

इस प्रकार चारो पदार्थ एक-दूसरे के बिना बिना अधूरे से रह जाते हैं क्योंकि अर्थ- भोजन, कपड़ों के बगैर शरीर की कोई स्थिति नहीं हो सकती तथा न संभोग के बगैर शरीर ही पैदा हो सकता है। शरीर के बिना मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता तथा मोक्ष की प्राप्ति के बगैर अर्थ और काम को सहयोग तथा मदद नहीं प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार से मोक्ष की दिल में सच्ची इच्छा रखकर ही काम और अर्थ का उपयोग करना चाहिए।

अगर कोई व्यक्ति मोक्ष की सच्ची इच्छा रखकर ही काम और अर्थ का उपयोग करता है तो वह व्यक्ति लालची और कामी माना जाता है। ऐसे व्यक्ति देश और समाज के दुश्मन होते हैं।

सिर्फ धर्म के द्वारा ही प्राप्त किए गए अर्थ और काम ही मोक्ष के सहायक माने जाते हैं। यह धर्म के विरुद्ध नहीं है। आर्य सभ्यता के मुताबिक धर्मपूर्वक अर्थ और काम को ग्रहण करके मोक्ष की प्राप्ति ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

आचार्य़ वात्स्यायन इस प्रकार कामसूत्र को शुरू करते हुए धर्म, अर्थ और काम की वंदना करते हैं। आचार्य वात्स्यायन का कामसूत्र वासनाओं को भड़काने के लिए नहीं है बल्कि जो लोग काम और मोक्ष को सहायक मानते है तथा धर्म के अनुसार स्त्री का उपभोग करते हैं, उन्ही के लिए है। नीचे दिए गए सूत्र द्वारा आचार्य वात्स्यायन में यही बताने की कोशिश की है।

श्लोक (3)- तत्समयावबोधकेभ्यश्चाचार्येभ्यः।।

अर्थ- इसी वजह से धर्म, अर्थ और काम के मूल तत्व का बोध करने वाले आचार्यों को प्रणाम करता हूं। वह नमस्कार करने के काबिल है क्योंकि उन्होने अपने समय के देशकाल को ध्यान में रखते हुए धर्म, अर्थ और काम तत्व की व्याख्या की है।

श्लोक (4)- तत्सम्बन्धात्।।

अर्थ- पुराने समय के आचार्यों नें सिद्धांत और व्यवहार रूप में यह साबित करके बताया है कि काम को मर्यादित करके उसको अर्थ और मोक्ष के मुताबिक बनाना सिर्फ धर्म के अधीन है। न रुकने वाले काम (उत्तेजना) को काबू में करके तथा मर्यादा में रहकर मोक्ष, अर्थ और काम के बीच सामंजस्य धर्म ही स्थापित कर सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि धर्म के मुताबिक जीवन बिताकर मनुष्य लोक और परलोक दोनों ही बना सकता है। वैशैषिक दर्शन में यतोऽभ्यू दयानिः श्रेयससिद्धि स धर्मः कहकर यह साफ कर दिया है कि धर्म वही होता है जिससे अर्थ, काम संबंधी इस संसार के सुख और मोक्ष संबंधी परलौकिक सुख की सिद्धि होती है। यहां अर्थ और काम से इतना ही मतलब है जितने से शरीर यात्रा और मन की संतुष्टि का गुजारा हो सके और अर्थ तथा काम में डूबे होने का भाव पैदा न हो।

इसी का समर्थन करते हुए मनु कहते हैं जो व्यक्ति अर्थ और काम में डूबा हुआ नहीं है उन्ही लोगों के लिए धर्मज्ञान कहा गया है तथा इस धर्मज्ञान की जिज्ञासा रखने वालों के लिए वेद ही मार्गदर्शक है।

इस बात से साबित होता है कि वैशेषिक दर्शन के मत से अभ्युदय का अर्थ लोकनिर्वाह मात्र ही वेद अनुकूल धर्म होता है।

धर्म की मीमांसा करते हुए मीमांसा दर्शन नें कहा है कि वेद की आज्ञा ही धर्म है। वेद की शिक्षा ही हिन्दू सभ्यता की बुनियाद मानी जाती है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि संसार से इतना ही अर्थ और काम लिया जाए जिससे मोक्ष को सहायता मिल सके। इसी धर्म के लिए महाभारत के रचनाकार ने बड़े मार्मिक शब्दों में बताया है कि मैं अपने दोनों हाथों को उठाकर और चिल्ला-चिल्लाकर कहता हूं कि अर्थ और काम को धर्म के अनुसार ही ग्रहण करने में भलाई है। लेकिन इस बात को कोई नहीं मानता है।

वस्तुतः धर्म एक ऐसा नियम है जो लोक और परलोक के बीच में निकटता स्थापित करता है। जिसके जरिये से अर्थ, काम और मोक्ष सरलता से प्राप्त हो जाते हैं। पुराने आचार्यों द्वारा बताया गया यही धर्म के तत्व का बोध माना गया है।

धर्म की तरह अर्थ भी भारतीय सभ्यता का मूल है। मनुष्य जब तक अर्थमुक्त नहीं हो जाता तब तक उसको मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। जिस तरह आत्मा के लिए मोक्ष जरूरी होता है, मन के लिए काम की जरूरत होती है, बुद्धि के लिए धर्म की जरूरत होती है, उसी तरह शरीर के लिए अर्थ की जरूरत होती है।

इसलिए भारतीय विचारकों ने बहुत ही सावधानी से विवेचन किया है। मनु के मतानुसार सभी पवित्रताओं में अर्थ की पवित्रता को सबसे अच्छा माना गया है। मनु ने अर्थ संग्रह के लिए कहा है कि जिस व्यापार में जीवों को बिल्कुल भी दुख न पहुंचे या थोड़ा सा दुख पहुंचे उसी कार्य व्यापार से गुजारा करना चाहिए।

अपने शरीर को किसी तरह की परेशानी पहुंचाए बिना ध्यान-मनन उपायों द्वारा सिर्फ गुजारे के लिए अर्थ संग्रह करना चाहिए। जो भी परमात्मा ने दिया है उसी में संतोष कर लेना चाहिए। इसी प्रकार पूरी जिंदगी काम करते रहने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसके अलावा और कोई सा उपाय संभव नहीं है।

वेदों, उपनिषदों के अलावा आचार्यों ने अपने द्वारा रचियत शास्त्रों में अर्थ से संबंधी जो भी ज्ञान बोध कराए हैं उनका सारांश यही निकलता है कि मुमुक्षु को संसार से उतने ही भोग्य पदार्थों को लेना चाहिए जितने के लेने से किसी भी प्राणी को दुख न पहुंचे।

धर्म और अर्थ की तरह काम को भी हिंदू सभ्यता का आधार माना गया है। धर्म और अर्थ की तरह इसको भी मोक्ष का ही सहायक माना जाता है। अगर काम को काबू तथा मर्यादित न किया जाए तो अर्थ कभी मर्यादित नहीं हो सकता तथा बिना अर्थ मर्यादा के मोक्ष प्राप्त नहीं होगा। इसी कारण से भारत के आचार्यों ने काम के बारे में बहुत ही गंभीरता से विचार किया है।

दुनिया के किसी भी ग्रंथ में आज तक अर्थशुद्धि के मूल आधार-काम-पर उतनी गंभीरता से नहीं सोचा गया है जितना कि भारतीय ग्रंथ में हुआ है।

भारतीय विचारकों नें काम और अर्थ को एक ही जानकर विचार किया है लेकिन भारतीय आचार्यों नें जिस तरह शरीर और मन को अलग रखकर विचार किया है उसी तरह शरीर से संबंधित अर्थ को और मन से संबंधित काम को एक-दूसरे से अलग मानकर विचार किया है।

काम एक महती मन की ताकत है। भौतिक कार्यों में प्रकट होकर यह ताकत अन्तःकरण की क्रियाओं द्वारा अभिव्यक्त होकर 2 भागों में बंट जाती है। यह ताकत कभी

भौतिक शक्ति तथा कभी चैतन्य के रूप में प्रकट होती है। कहीं-कहीं तो वह छितराकर काम करती है तो कहीं संवरण रूप में काम करती है।

हर मनुष्य का जीवन चित की इन्ही आंतरिक और बाहय शक्तियों के ऐसे बिखराव तथा संघर्ष-स्थल बना रहता है। अणु-अणु परमाणु में मन की यह शक्ति समाई हुई है। इसका एक हिस्सा बाहर है तो एक अंदर। इसमें से एक हिस्सा तो व्यक्ति को प्रवृत्ति की तरफ ले जाता है और दूसरा निवृत्ति की तरफ।

मूल वासनाएं ही मन की असली प्रवृत्तियां कहलाती है। हर तरह की वासनाओं या मूल प्रवृत्तियों का वर्गीकरण किया जाए तो वितैषणा, दारैषणा और लोकेषणा इन तीनों हिस्सों में सभी वासनाओं अथवा मन की मूल प्रवृत्तियों का समावेश हो जाता है। धन, स्त्री, पुत्र और यश आदि की इच्छा के मूल में आनंद का उपयोग रहता है। इसी तरह की वासनाओं, इच्छाओं या प्रवृत्तियों का प्राण आनंद नहीं होता।

तैत्तिरीय उपनिषद का मानना है कि आनंद से ही भूतों की उत्पति होती है, आनंद से ही उत्पन्न सारी वस्तु तथा जीव-समुदाय जीवित रहते हैं तथा आनंद में ही लीन होते हैं। आनंद ही सब कुछ है।

वृहदारण्यक उपनिषद के अंतर्गत आनंद का एकमात्र स्थान जननेन्द्रिय है। बाकी सभी चीजें आनंद के साधन है। वित्त, स्त्री और लोक सभी कुष आनंद को बढ़ाने की इच्छा रखते हैं।

स्वामी शंकराचार्य के मतानुसार अंतरात्मा पहली अकेली थी लेकिन कालांतर में वह विषयों को खोजने लगा जैसे मेरी स्त्री, पुत्र हो और उनके भरण-पोषण के लिए धन हो। उन्ही के लिए व्यक्ति अपने प्राणों की परवाह न करते हुए बहुत सी परेशानियों को झेलकर काम करता है। वह उनसे बढ़कर और किसी चीज को सही नहीं मानता। यदि बताई गई चीजों में से कोई भी एक चीज उपलब्ध नहीं होती तो वह अपनी जिंदगी को बेकार समझता है।

जीवन की पूर्णता अथवा अपूर्णता, सफलता अथवा असफलता का मापक यंत्र आनंद को माना जाता है। विषयों से ताल्लुक रखने में मनुष्य को भरपूर आनंद मिलता है। इस प्रकार यह पूरी तरह से साबित हो चुका है कि उसके इच्छित विषयों में से एक के भी समाप्त होने पर वह मनुष्य अपने आपका सर्वनाश कर देता है और उसकी उपलब्धि से वह अपने आपको यथार्थ समझता है।

शंकराचार्य ने ब्रहमसूत्र के शांकट भाष्य के अंतर्गत इस बात को स्वीकार किया है। उन उदाहरणों के द्वारा यह निष्कर्ष निकलता है कि हर व्यक्ति जोड़े के द्वारा अपनी पूर्णता की इच्छा रखता है। सृष्टि की शुरुआत में जब ब्रहम अकेले थे तो उनके मन में यही संकल्प पैदा

हुआ कि एकोऽह बहु स्याय! एक से बहुत सारे हो जाने की ख्वाहिश ही अपूर्णता से पैदा होने वाले अभाव को व्यक्त को करती है।

हर मनुष्य रति को तलाश करना चाहता है, उसे बढ़ाने की कोशिश करता है, अनेक होकर आनंद का उपभोग करना चाहता है।

अकेले में उसे आनंद प्राप्त नहीं होता, अकेले में किसी तरह का आनंद नहीं है इसलिए उसे दूसरे की जरूरत पड़ती है।

इसके द्वारा 3 बातें सिद्ध होती है कि एक तो यह कि दो भिन्नताओं के बीच के संबंध को काम कहते हैं। यह एक प्रवृत्ति है जो विषय और विषयी को एकात्मा बनाती है।

दूसरी बात यह है कि काम-प्रवृत्ति विषय और रमण की इच्छा आदि शक्ति है। वह अकेला था इसका उसे बोध था- पहले वे आत्मा से एक ही था। वह पुरुष विध था। उसने अपने अलावा और किसी को नहीं पाया। मैं हूं इस तरह पहले उसने वाक्य कहा।

मैं हूं का बोध होने पर भी वह खुश नहीं हुआ इसलिए दूसरे की इच्छा की- स द्वितीयमैच्छत- वह दूसरा विषय था। फिर विषय ने अनेक का रूप धारण कर लिया-

सोऽकामयत बहु स्याथां प्रजायते इति- उसने चाहा कि मै अनेक हो जाऊं, मैं पैदा करुं।

तदैदात बहुस्थां प्रजायेय इति। उसने सोचा कि मैं अनेक हो जाऊं मैं सृजन करूं।

स ऐक्षत लोकान्नु सृजा इति। उसने सोचा कि मैं लोकों की सृष्टि करूं। उसके चाहने और सोचने पर भी इसकी सभी क्रियाओं के मूल में सिर्फ काम-प्रवृत्ति है। उसे जैसे ही अहमस्मि- मैं हूं का बोध हुआ वैसे ही वह डरा तथा एक मददगार की इच्छा करने लगा।

जब जीव अविद्याग्रस्त हुआ तो उसे अपने अस्तित्व का ज्ञान हुआ कि मैं हूं। इसके बाद उसे अपनी पहले की स्थिति को जानने की इच्छा हुई जिससे उसके दिल में दूसरे का बोध हुआ। दूसरे के बारे में दिमाग में आते ही वह डर गया, उसे उस तरफ से विकर्षण हुआ और फिर विकर्षण से आकर्षण पैदा हुआ कि अकेले संभोग नहीं किया जा सकता इसलिए दिल में दूसरे की इच्छा पैदा हुई।

सबसे पहले जीव को दूसरे का बोध होता है उसके बाद डर पैदा होता है। डर तभी पैदा होता है जब भिन्नता उत्पन्न होती है। जिस जगह पर डर पैदा होता है वहां पर डर को दूर करने के लिए खोई हुई चीज की इच्छा पैदा होती है। दार्शनिक की दृष्टि में इसी प्रेम-भय, प्रवृत्ति-निवृत्ति, आकर्षण-विकर्षण, राग-द्वेष में अविद्या का स्वरूप स्थिर रहता है। पुराने समय

से अनंत जीव-समुदाय इसी में फंसा हुआ है। इस तरह के सभी अज्ञान के मूल में दूसरे के प्रति आकर्षण और दूसरों को अपने से अलग ही जानना चाहिए।

इसलिए साबित होता है कि काम और आकर्षण की इच्छा ही विश्व वासना कहलाती है। अविद्या, आकर्षण आदि सभी वासनाओं के मूल में काम मौजूद है। इसी प्रकार से वेदों, पुराणों में भी कार्य को आदिदेव कहा गया है।

काम शुरुआत में पैदा हुआ। पितर, देवता या व्यक्ति उसकी बराबरी न कर सके।

शैव धर्म में पूरे संसार के मूल में शिव और शक्ति का संयोग माना जाता है।

यही नहीं शैव मत के अंतर्गत आध्यात्मिक पक्ष में आदि वासना पुरुष और प्रकृति के संबंध में प्रकाशित है तथा वही भौतिक पक्ष में स्त्री और पुरुष के संभोग में परिणत है।

पूरी दुनिया को शिव पुराण और शक्तिमान से पैदा हुआ शैव तथा शाक्त समझता है। पुरुष और स्त्री के द्वारा पैदा हुआ यह जगत स्त्री पुंसात्मक ही है। ब्रह्म शिव होता है तथा माया शिव होती है। पुरुष को परम ईशान माना जाता है और स्त्री को प्रकृति परमेश्वरी। जगत के सारे पुरुष परमेश्वर है और स्त्री परमेश्वरी है।

इन दोनों का मिथुनात्मक संबंध ही मूल वासना है तथा इसी को आकर्षण और काम कहा जाता है।

इसके अलावा शिवपुराण में 8 से लेकर 12 प्रकरण तक काम के विषय में जो बताया गया है उसमे काम को मैथुनाविषयक काम के अर्थ में ही प्रयोग किया गया है। उनके अनुसार यह मानना कितना सच है कि विश्वामित्र, सुखदेव, श्रृंगी जैसे ऋषि और श्रीराम जैसे साक्षात ईश्वर के अवतार भी काम के जाल में फंसे हुए है।

शिव पुराण की धर्म संहिता और वात्सायायन के कामसूत्र में लिखा है कि संकल्प के मूल में विषय आसक्ति ही बनी रहती है।

काम को मन का आधार माना जाता है जो बच्चे के कोमल हृदय में सबसे पहले सपंदित होता है। इसको वही जान सकता है जो सच्चाई को देखने की इच्छा रखता है।

श्लोक (5)- प्रजापतिहिं प्रजाः सृष्टवा तासां स्थितिनिबंधनं त्रिवर्गस्य साधनमध्यायानां शतसहस्त्रेणाग्रे प्रोवाच।।

अर्थ- प्रजापति ने प्रजा को रचकर और उनके रोजाना कार्य धर्म, अर्थ और काम के साधन भूतशास्त्र का सबसे पहले 1 लाख श्लोकों में प्रवचन किया है।

भारतीय सिद्धान्त के मुताबिक जब तक द्वंद (अंदरूनी लड़ाई) है तब तक दुख भी रहेगा। इसलिए दुख को निकालकर फैंक देना चाहिए। भगवान शिव के समान दूसरा कोई नहीं है। इन तीनों विषयों की ज्वाला यहां पर नहीं है। मनुष्य का गम्य स्थान भारतीय दार्शनिकों नें इसे ही कहा है। भारतीय वागंमय का निर्माण भी इसी को प्राप्त करने के लिए ही हुआ है। ब्रह्मविद्या के अंतर्गत यह सारी विद्याएं मौजूद है।

सारे देवताओं से पहले पूरे संसारे की रचना करने वाले प्रजापति ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा ने अपने सबसे बड़े पुत्र अथर्व के लिए ब्रह्मविद्या का निर्माण किया जो कि हर विद्या में सबसे बढ़कर है। इससे इस बात का साफ पता चल जाता है कि ब्रह्मविद्या के अंतर्गत कामशास्त्र को भी महत्व दिया गया है।

आचार्य वात्सायायन के मतानुसार बह्मा ने प्रजा को उनके जीवन को नियमित बनाने के लिए कामसूत्र के बारे में बताया था- जो कि सुसंगत और परंपरागत माना गया है। बह्मा ने कामसूत्र को काम, अर्थ और धर्म का साधन मानकर इसकी रचना की है क्योंकि इन तीनों का आखिरी पड़ाव मोक्ष ही है और मनुष्य के जीवन का मकसद भी मोक्ष को प्राप्त करना ही है। इसलिए जब तक मोक्ष की असली परिभाषा को बहुत अच्छी तरह से समझा नहीं जाएगा तब तक इसको प्राप्त करना बहुत ही ज्यादा मुश्किल है।

ब्रह्मा के लिए कामशास्त्र का निर्माण करना इसलिए जरूरी है कि काम आदिदेव है, इसकी शक्ति अपार है। जब तक काम का नियमित साधन नहीं किया जाता तब तक मानव जीवन भी नियमित नहीं हो सकता और उसकी कठिन से कठिन तपस्या पर भी पानी फेर सकता है।

योगवशिष्ठ के मतानुसार- ब्राह्मणों को जीवनमुक्त, नारदत्तऋषि, इच्छा से रहित, बहुज्ञ तथा विरागी समझा जाता है। वह देखने में आकाश की तरह कोम, विशद और नित्य होते है, लेकिन फिर भी वह काम के वशीभूत किस प्रकार हो गए।

तीनों लोकों के जितने भी प्राणी है चाहे वह मनुष्य हो या देवता, उन सभी लोगों का शरीर स्वभाव से द्वयात्मक होता है। जब तक शरीर मौजूद है तब तक शरीर धर्म स्वभाव से ही जरूरी है। जो वासना प्राकृतिक होती है उसको निरोध के द्वारा नही दबाया जा सकता क्योंकि हर जीव प्रकृति के अनुसार ही चलता है तो फिर निग्रह का क्या काम।

प्रकृति यान्ति भूतानि निग्रहः कि करिष्यति।

इसी प्रकार मूलभूत प्रवृत्तियों का निरोध करना बेकार है। आचार्य वात्सयायन के मतानुसार मानव जीवन में कामसूत्र की सबसे ज्यादा जरूरत मानते हुए ही सबसे पहले ब्रह्मा जी ने कामसूत्र की रचना की थी। इसके साथ ही इस कथन के द्वारा ही ग्रंथ की प्रामाणिकता साबित हो जाती है।

श्लोक (6)- तस्यैकदेशिकं मनुः स्वायम्भुवो धर्माधिकारिकं पृथक् चकार।।

अर्थ- बह्मा के द्वारा रचे गए 1 लाख अध्यायों के उस ग्रंथ के धर्म विषयक भाव को स्वयम्भू के पुत्र मनु ने अलग किया।

श्लोक (7)- बृहस्पतिर्थाधिकारिकम्।।

अर्थ- अर्थशास्त्र से संबंधित विभाग को बृहस्पति ने अलग करके अपने अर्थशास्त्र का निर्माण किया।

श्लोक (8)- महादेवानुचरश्च नन्दी सहस्त्रेणाध्यायानां पृथक् कामसूत्रं प्रोवाच।

अर्थ- इसके बाद उस शास्त्र में से 1000 अध्याय वाले कामसूत्र को महादेव के अनुचर नन्दी ने अलग कर दिया।

श्लोक (9)- तदेव तु पञ्त्रभिरध्यायशतैरौद्दालकिः श्वेतकेतुः सञ्त्रिक्षेप।।

अर्थ- उद्यालक के पुत्र श्वेतकेतु ने नन्दी के उस कामसूत्र को 500 अध्यायों में करके पूरा कर डाला।

श्लोक (10)- तदेव तु पुनरध्यर्धेनाध्यायशतेन साधारण-साम्प्रयोगिककन्यासम्प्रयुक्तकभार्याधिकारिक-पारदारिक-वैशिकऔपनिषदिकैः सप्तभिरधिकरणैर्बाभ्रव्यः पाञ्त्रालञ्त्रक्षेप।।

अर्थ- इसके बाद पाञ्त्राल देश के बभ्रु के बेटे ने श्वेतकेतु के 500 अध्यायों वाले कामसूत्र को 100 अध्यायों में साधारण साम्प्रयोगिक, कन्या सम्प्रयुक्त, भार्याधिकारिक, पारदारिक, वैशिक और औपनिषदिक नाम के 7 अधिकरणों में जोड़कर पेश किया।

मानव जीवन के मकसद को निर्धारित करने के लिए और उसे काबू करने के लिए ब्रह्मा ने एक संविधान बनाया जिसके अंदर लगभग 1 लाख अध्याय थे। इन अध्य़ायों में जीवन के हर पहलू का विशद्, संयमन और निरूपण का उल्लेख था। मनु ने उस विशाल ग्रंथ को मथकर आचारशास्त्र का एक अलग संस्करण पेश किया जो मनुस्मृति या धर्मशास्त्र के नाम से प्रचलित है।

मनु ने जो मनुस्मृति रची थी वह असली रूप में उपलब्ध नहीं है। प्रचलित स्मृति उसी स्मृति का संक्षिप्त विवरण है जिसे मनु ने पेश किया था। आचार्य बृहस्पति ने भी उसी विशाल ग्रंथ के द्वारा अर्थशास्त्र विषयक भाग अलग करके बार्हस्पत्यम अर्थशास्त्र की रचना की। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में बृहस्पति के अर्थशास्त्र के अंतर्गत ही देखने को मिलते है।

ब्रह्मा से लेकर बाभ्रव्य तक की कामशास्त्र की रचना पर विहंगम दृष्टि डालने से ग्रंथ रचना पद्धति की परंपरा और उसके इतिवृत का भी बोध होता है। कामशास्त्र को ब्रह्मा ने नहीं रचा उन्होने तो सिर्फ इसके बारे में बताया है। इससे यह बात साबित हो जाती है कि रचनाकाल से ही कामसूत्र का प्रवचन काल शुरू होता है।

कामसूत्र के छठे और सातवें अध्याय से पता चल जाता है कि ब्रह्मा के प्रवचन शास्त्र से पहले मनु ने मानवधर्म को अलग किया, उसके बाद बृहस्पति ने अर्थशास्त्र को अलग किया, इसके बाद फिर नन्दी ने इसको अलग किया।

इसके बाद अर्थशास्त्र और मनुस्मृति की रचना हुई क्योंकि बृहस्पति और मनु ने कामसूत्र की रचना नहीं की बल्कि इसे सिर्फ अलग किया है। इसके बाद ही श्वेतकेतु और नन्दी ने इसके 1000 अध्यायों को छोटा करके 500 अध्यायों का बना दिया। इस बात से साफ जाहिर हो जाता है कि ब्रह्मा द्वारा रचित शास्त्र में से नन्दी ने कामविषयक सूत्रों को एक सहस्त्र अध्यायों में बांट दिया। उसने अपनी ओर से इसमें कुछ भी बदलाव नहीं किया क्योंकि वह प्रवचन काल था।

उसने जो कुछ भी पढ़ा या सुना था वह ऐसे ही शिष्यों और जानने वालों को बताया। लेकिन श्वेतकेतु के काल में संक्षिप्तीकरण का प्रचलन हो चुका था और बाभ्रव्य के काल में तो ग्रंथ-प्रणयन और संपादन की एक मजबूत प्रणाली प्रचलित हो गयी। पांचाल द्वारा तैयार किए गए 7 अधिकरण इस प्रकार है-

•साधारण अधिकरण

•साम्प्रयोगिक अधिकरण

•कन्या सम्प्रयुक्तक अधिकरण

•भार्याधिकारिक अधिकरण

•पारदरिक अधिकरण

•वैशिक अधिकरण

•औपनिषदिक अधिकरण

श्लोक (11)- तस्यं षष्ठं वैशिकमधिकरणं पाटलिपुत्रिकाणां गणिकानां नियोगाद् दत्तक पृथक चकार।।

अर्थ- आचार्य दत्तक ने बाभ्राव्य द्वारा संक्षिप्त किए गए कामसूत्र के छठे भाग वैशिक नामक अधिकरण को अलग कर दिया। उन्होने यह सब पाटलिपुत्र की गणिकाओं द्वारा अनुरोध करने पर ही किया था।

श्लोक (12)- तत्प्रसगांत् चारायणः साधारणमधिकरणं पृथक् प्रोवाच। सुवर्णनाभः साम्प्रयोगिकम्। घोटकमुखः कन्यासम्प्रयुक्तकम्। गोनर्दीयो भार्याधिकारिकम्। गोणिकापुत्रः पारदारिकम्। कुचुमार औपनिषदिकमिति।।

अर्थ- आचार्य चारायण ने इसी प्रसंग से साधारण नाम के अधिकरण का पृथक प्रवचन किया। साम्प्रयोगिक नाम के अधिकरण को आचार्य सुवर्णनाभ ने अलग किया। कन्यासम्प्रयुक्तक नाम के अधिकरण को आचार्य घोटकमुख ने अलग किया। आचार्य गोनर्दीय ने भार्याधिकारिक नाम के अधिकरण को अलग किया। पारदारिक नाम के अधिकरण को गोणिकापुत्र ने कामसूत्र से अलग किया और औपनिषदिक नाम के अधिकरण को आचार्य कुचुमार ने अलग किया।

श्लोक (13)- तत्र दत्तकादिभिः प्रणीतानां शास्त्रावयवानामेकदेशत्वात् महदिति च बाभ्रवीयस्य दुरध्येयत्वात् संक्षिप्य सर्वमर्थमल्पेन ग्रंथेन कामसूत्रमिदं प्रणीतम्।

अर्थ- दत्तक आदि आचार्यों ने विभिन्न प्रकार के अधिकरणों को लेकर अपने-अपने ग्रंथों की रचना की। इस प्रकार ये खंड समग्र शास्त्र के ही भाग माने जाते हैं और आचार्य बाभ्रव्य का मूल ग्रंथ विशाल होने की वजह से साधारण मनुष्यों के लिए दुरध्येय है। इसलिए उस महान ग्रंथ को वात्स्यायन ने संक्षिप्त करके थोड़े ही में सारे विषयों से संपन्न कामसूत्र की रचना की।

मानव जाति की तरक्की और उसकी परंपरा को बनाए रखने के लिए ब्रह्मा ने काम, अर्थ और धर्म तीनों पुरुषार्थों को प्राप्त करने के लिए 100 अध्यायों में उपदेश दिए हैं। उस प्रवचन में से धर्माधिकारिक भागों को लेकर मनु ने मनुस्मृति की रचना की। बृहस्पति ने अर्थपूरक विषयों को लेकर अर्थशास्त्र की स्वतंत्र रचना की। फिर उसी प्रवचन में से काम के विषय के भागों को लेकर नन्दी ने एक सहस्त्र अध्यायों में कामसूत्र की रचना की।

ब्रह्मा से लेकर नन्दी तक की परंपरा को देखकर यह पता चलता है कि कामसूत्र ब्रह्मा द्वारा सृष्टि की रचना करने से पहले भी था। सृष्टि की रचना के बाद उन्नति और मानवी परंपरा को बनाए रखने के लिए ब्रह्मा ने कामसूत्र का भी उपदेश दिया जो धर्म और अर्थ से संबंधित था। उस विशाल प्रवचन के आधार पर ही नन्दी ने सहस्त्र अध्यायों के एक स्वतंत्र कामशास्त्र की रचना की अर्था कामसूत्र के प्रवर्तक नन्दी है।

आचार्य वात्स्यायन ने कामसूत्र ग्रंथ की शुरुआत में ही दावा किया था कि इसमें सभी प्रयोजनों का सम्यक समावेश किया गया है।

श्लोक (14)- तस्यायं प्रकरणधिकरणसमुद्देशः।।

अर्थ- कामसूत्र के प्रकरण, अधिकरण और समाद्वेश की सूची इस प्रकार है- अधिकार पूर्वक विषय जहां शुरु होगा उसे प्रकरण करते हैं जिसके प्रकरण होते हैं उसे अधिकरण कहते हैं तथा संक्षिप्त कथन को समुदद्वेश कहते हैं।

श्लोक (15)- शास्त्रसंग्रहः। त्रिवर्गप्रतिपत्तिः। विद्यासमुद्देशः। नागरकवृत्तम्। नायकसहाय-दूतीकर्मविमर्शः। इति साधारणं प्रथमाधिकरणम् अध्यायाः पञ्त्र। प्रकरणानि पञ्त्र।।

अर्थ- कामसूत्र का अनुबंधन अधिकरण अध्याय और प्रकरण के रूप में किया गया है। पहले अधिकरण का नाम साधारण इस कारण से रखा गया है कि इस अधिकरण में ग्रंथातर्गत-सामान्य विषयों का परिचय है, किसी सिद्धान्त की व्याख्या अथवा तात्विक विवेचन नहीं किया गया है।

पहला प्रकरण, पहला अध्याय- शास्त्र-संग्रह। यहां पर शास्त्र-संग्रह का अर्थ है इस शास्त्र की सूची। ग्रंथ लिखने से पहले लेखक एक विषय सूची तैयार करता है और उसी सूची के द्वारा ग्रंथ की रचना करता है। इसी प्रकार आचार्य वात्स्यायन ने अपने ग्रंथ की विषय सूची का नाम शास्त्र संग्रह रखा है अर्थात वह संग्रह जिससे यह ग्रंथ शासित हुआ है।

दूसरा प्रकरण, दूसरा अध्याय- त्रिवर्ग प्रतिपात्ति। काम, धर्म और अर्थ यह 3 त्रिवर्ग कहलाए जाते हैं। त्रिवर्ग की प्राप्ति का नाम प्रतिपात्ति है। इस अध्याय और प्रकरण में यह भी बताया गया है कि धर्म, अर्थ और काम को किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है।

तीसरा प्रकरण, तीसरा अध्याय- विद्यासमुद्देश। यहां पर सारी विद्याओं की नाम की सूची को विद्या समुद्देश का नाम दिया गया है। इस अध्याय का मुख्य मकसद है कि मानव को स्मृति, श्रुति, अर्थ विद्या और उसकी अंगभूत विद्या दंडनीति के अध्ययन के साथ कामसूत्र का अध्ययन जरूर करना चाहिए। यहां पर विद्याओं की नाम-सूची का अर्थ संभोग की 64 कलाओं से हैं।

चौथा प्राकरण चौथा अध्याय- नागरकवृत। नागरक से काम सूत्रकार का अर्थ विदग्ध अथवा रसिक व्यक्ति से होता है और वृत्त का अर्थ आचरण नहीं बल्कि दिनचर्या समझना चाहिए।

कामसूत्र के मुताबिक मनुष्य का सबसे पहले विद्या पढ़नी चाहिए, फिर अर्थोपार्जन करना चाहिए और इसके बाद विवाह करके गृहस्थ जीवन में प्रवेश करके नागरक वृत्त का आचरण करना चाहिए। कोई भी मनुष्य जब तक कामकलाओं की शिक्षा प्राप्त नहीं कर लेता है तब तक उसको विवाह करने का कोई हक नहीं है। गृहस्थ जीवन को सही तरीके से चलाने के लिए अर्थ संग्रह जरूरी है। सुशिक्षित, धन-संपन्न मनुष्य ही अपने वैवाहिक जीवन को सही तरीके से चलाने में सक्षम हुआ करता है।

पांचवां प्रकरण, पांचवां अध्याय- नायक सहायदूती- कर्म- विमर्श। आचार्य वात्स्यायन के मतानुसार विवाह से पहले वर्ण धर्म के मुताबिक स्त्री और पुरुष का चुनाव करके प्रेम संबंध स्थापित करना चाहिए। अगर इस तरह के प्रेम संबंधों को स्थापित करने में किसी तरह की रुकावट आती है तो मदद के लिए स्त्री या पुरुष को जरिया बनाना चाहिए। स्त्री-पुरुष किस तरह के संबंध स्थापित करें, किस तरह के व्यक्ति को अपना जरिया बनाएं, इस अध्याय के अंतर्गत इन्ही बातों का उल्लेख किया गया है।

श्लोक (16)- प्रमाणकालाभावेभ्यो रतावस्थापनम्। प्रीतिविशेषाः। आलिंगनविचाराः। ,चुम्बनविकल्पाः। नखरदनजातयः। दशनच्छेद्यविधयः। देश्याउपचाराः। संवेशनप्रकाराः। चित्ररतानि। प्रहणयोगाः। तद्युक्ताश्च। सीत्कृतोपक्रमाः। पुरुषायितम्। पुरुषोपसृप्तानि। औपरिष्टकम्। रतारम्भावसानिकम्। रतविशेषाः। प्रणयकलहः। इति साम्प्रयोगिकं द्वितीयमधिकरणम्। अध्याया दश। प्रकरणानि सप्तदश।।

अर्थ- दूसरे अधिकरण में अध्यायों और प्रकरणों को इस प्रकार से बताया गया है-

•प्रमाण, भावों और काल के मुताबिक संभोग क्रिया की व्यवस्था करना।

•प्रतिभेद।

•आलिंगन।

•चुंबन प्रकार।

•नखच्छेदन-प्रकार।

•दंतच्छेदन-प्रकार।

•अलग-अलग प्रदेशों के लोगों की अलग-अलग प्रवृत्तियां।

•संभोग के प्रकार।

•विचित्र प्रकार के विशिष्ट रत।

•मुट्ठी मारना।

•अलग-अलग स्ट्रोकों से पैदा हुई सी-सी करना।

•थकने के बाद पुरुष का स्त्री के समान व्यवहार करना।

•पुरुष का पास आना।

•औपरिष्टक (मुखमैथुन)।

•संभोग क्रिया की शुरुआत और आखिरी में कर्त्तव्य।

•उत्तेजना के प्रकार।

•प्रणय कलह।

इस अधिकरण के अंतर्गत यह 17 प्रकरण दिए गए हैं और 10 अध्याय हैं।

इस दूसरे अधिकरण का नाम साम्प्रयोगिक है। सम्प्रयोग से मतलब यहां संभोग से हैं। कामसूत्र का ग्रंथ होने की वजह से इस ग्रंथ में यह खासतौर से बताया गया है पुरुष अर्थ, धर्म और काम नामक तीनों वर्गों की प्राप्ति के लिए स्त्रियसाधयत अर्थात स्त्री को प्राप्त करें। आचार्य वात्स्यायन स्त्री को पाने का सबसे बड़ा लक्ष्य संभोग को ही मानते हैं। लेकिन जब

तक संभोग क्रिया की पूरी जानकारी न हो तब तक इसमें पूरी तरह से कामयाबी मिलना मुश्किल है और न ही किसी तरह की आनंद की प्राप्ति होगी।

ऋग्वेद में संभोग के जिन 10 उपायों को बताया गया है वह कामसूत्र की उपर्युक्त संभोग क्रियाओं के अंतर्गत हैं। यह कोई खास विषय नहीं हैं। आध्यात्मिक नजरिये से भी जगदवैचिन्य मैथुनात्मक और कामात्मक है। काम का मुख्य भाग आकर्षण है या फिर आकर्षण का खास अंग काम है।

यही आकर्षण जब बड़ो के प्रति होता है, तब वह श्रद्धा, भक्ति आदि सम्मान के भावों में दिखाई पड़ता है, बराबर वालों के प्रति मित्रता, प्यार और सहयोगी के रूप में होता है, अपने से छोटों के प्रति दया और अनुकंपा आदि के रूप में प्रकट होता है और बच्चों के प्रति वात्सल्य भाव बनता है। वहीं काम मां के स्तनों में वात्सल्य के रूप में प्रेमी का आलिंगन करते समय कामरूप में और वही काम दीन-दुखियों के प्रति कृपा के रूप में अवतरिक होता है।

मगर इन सारे रूपों में एक ही मानसिक भाव प्रवाहित रहता है, वह होता है मिथुन का संबंध- काम या आकर्षण। इसी वजह से बृहदारण्यक उपनिषद में बताया गया है-

पुरुष काममय है। काम मन की जरूरत है।

श्लोक (17)- वरणविधानम्। सम्बन्धनिर्णयः। कन्याविस्त्रम्भणम्। बालायाः। उपक्रमाः। इंगिताकारसूचनम्। एकपुरुषाभियोगः। प्रयोज्यस्योपावर्तनम्। अभियोगतश्च कन्यायाः। प्रतिपत्तिः विवाहयोगः। इति कन्यासम्प्रयुक्तकं तृतीयाधिकरणम्। अध्यायाः पञ्त्र। प्रकरणानि नव।।

अर्थ- इसके बाद कन्या सम्प्रयुक्त नाम के तीसरे अधिकरण के प्रकरणों का निर्देश किया जा रहा है-

•कन्यावरण।

•विवाह करने के बारे में फैसला करना

•कन्या को भरोसा दिलाना।

•कन्या में प्यार पैदा करने का ढंग।

•इशारों आदि को समझना।

•इशारों, कोशिशों या किसी बहाने से देखी हुई कन्या से विवाह करने की कोशिश।

•कन्या द्वारा अपने चहेते को अपनी ओर आकर्षित करना।

•अपने प्रेमी को अभियोगों द्वारा प्राप्त करना।

इस अधिकरण के 9 प्रकरण सुखी दांपत्य जीवन की कुंजी माने गए हैं। कामसूत्र के रचियता वात्स्यायन विवाह को धार्मिक बंधन मानते हुए दिल का मिलाप स्वीकार करता है। वह लड़कियों को न तो सिर्फ भेड़-बकरी जानकर मनचाहे खूंटे पर बांधने का समर्थन करता है और न ही उन्हे उच्छ्रखल और व्यभिचारिणी बनने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। इसलिए इसका विधान है कि लड़कियां और लड़के अपनी युवावस्था में पहुंचने पर संभोग की 64 कलाओं का अध्ययन करें तथा अपना जीवन साथी तलाश करने में अपने दिल और बुद्धि का ज्यादा से ज्यादा उपयोग करें।

इस बात की सच्चाई से इंकार नहीं किया जा सकता कि हर आदमी के अंदर ऐसे 2 तत्व रहते हैं जो एक-दूसरे से विशिष्ट हैं। इनमें से एक तर्कपूर्ण वृत्ति है और दूसरी विचारशून्य वृत्ति। यही वृत्ति अपने को काम-संभोग, भूख-प्यास और बहुत सी इच्छाओं के रूप में प्रकट करती है। दर्शनशास्त्र के अनुसार हर प्राणी समूह इच्छामात्र है। इच्छाओं के कारण ही मनुष्य़ का मन हर समय भटकता रहता है।

मनुष्य हर समय अपनी इच्छाओं को पूरी करने की कोशिश में लगा रहता है। इच्छाएं हमेशा पूरी होना चाहती है। हालात अनुकूल होने पर जब इच्छाएं पूरी नहीं होती तो वह मन में जमा होकर विक्षोभ उत्पन्न करती है। यह भी सच्चाई है किसी व्यक्ति को उसकी मनचाही चीज देश, काल, समाज या हालात के बंधन से अथवा राजदंड के डर से न मिलकर किसी दूसरे को मिल जाती है तो उसकी इच्छा क्रिया रूप में जमा हो जाती है और अगर वह इच्छाएं पूरी नहीं होती तो एक तूफान के रूप में मन में समा जाती है। जिसका नतीजा यह होता है कि उस व्यक्ति के मन और मस्तिष्क का संतुलन बिगड़ जाता है।

श्लोक (18)- एकचारिणीवृत्तम्। प्रवासचर्या। सपलीषु ज्येष्ठावृत्तम्। कनिष्ठावृत्तम्। पुनर्भवृत्तम्। दुर्भगावृत्तम्। आन्तःपुरिकम्। पुरुषस्य बह्वीषु प्रतिपत्तिः। इति भार्याधिकारिकं चतुर्थमधिकरणम्। अध्यायौ द्वो प्रकरणान्यषटौ।।

अर्थ- इस अधिकरण का नाम भार्याधिकारिक है। इसके अंतर्गत 8 प्रकरण और 2 अध्याय है-

•सिर्फ अपने पति पर ही अनुराग रखने वाली पत्नी का कर्तव्य।

•पति के कहीं दूर जाने पर पत्नी का कर्त्तव्य।

•सबसे बड़ी पत्नी का अपनी से छोटी सौतनों के साथ बर्ताव।

•सबसे छोटी पत्नी का अपनी से बड़ी सौतनों के साथ बर्ताव।

•दूसरी बार विवाहित विधवा का फर्ज।

•अभागिनी पत्नी का अपनी सौतनों और पति को खुश रखने का विधान।

•अंतःपुर (महलों में रहने वाले) के फर्ज।

•पति का अपनी बहुत सारी पत्नियों के प्रति कर्त्तव्य।

विवाह के बाद हर कन्या, कन्या न कहलाकर पत्नी कहलाती है। पत्नी और सप्तनी 2 प्रकार की भार्या होती है। इसके अंतर्गत इन दोनों प्रकार की पत्नियों के कर्त्तव्य दिए जा रहे हैं। गृहस्थ जीवन को सुख-संपन्न रूप से चलाने के नियमों को आचार्य वात्स्यायन अच्छी प्रकार जानते हैं। उसे इस बात की जानकारी भी है कि वह कौन सी एक छोटी सी चिंगारी है जो पूरे घर को जलाकर राख कर देती है। वह घर को सुखी बनाने के लिए मंगल कामना करता हुआ इस अधिकरण द्वारा सुझाव पेश करता है।

श्लोक (19)- स्त्री-पुरुषशीलावस्थापनम्। व्यावर्त्तनकारणानि। स्त्रीषु सिद्धाः पुरुषाः। अयन्तसाध्या योषितः। परिचयकारणानि। अभियोगाः। भावपरीक्षा। दूतीकर्माणि। ईश्वरकामितम्। अंतःपुरिकं दाररक्षितकम्। इति पारदारिकं पञ्चममधिकरणम्। अध्यायाः षट् प्रकरणानि दश।

अर्थ- पारदारिक नाम के पांचवें अधिकरण के प्रकरणों का निर्देश करते हैं। इसमें 6 अध्याय और 10 प्रकरण है।

•पुरुष और स्त्री के शील की व्यवस्थापना।

•पराए पुरुष के साथ संबंध बनाने में रुकावट डालने वाले कारण।

•स्त्रियों को अपने वश में करने में निपुण पुरुष।

•अपने आप ही वश में होने वाली स्त्रियां।

•परिचय प्राप्त करने के नियम।

•अभियोग।

•भावों की परीक्षा।

•दूतीकर्म।

•ऐश्वर्यशाली पुरुषों की इच्छाओं को पूरी करने के उपाय।

•व्यभिचारी पुरुषों से स्त्रियों की रक्षा।

इस अधिकरण का मुख्य मकसद किन हालातों में पराए पुरुष और पराई स्त्री का आपस में प्रेम संबंध पैदा होता है, बढ़ता है और टूट जाता है। किस तरह परदार इच्छा पूरी होती है और किस प्रकार व्यभिचारी से स्त्रियों की रक्षा की जा सकती है।

पुरुष और स्त्री के बीच एक ही शक्ति बहुत से रूपों में मौजूद रहती है जिसको प्रेम कहते हैं। अगर प्रेम का कहीं कोई बीज होता है तो वह सिर्फ संभोग की इच्छा ही है।

दार्शनिक दृष्टि से प्रेम का मुख्य मकसद संभोग को माना जाता है। जितने व्यवहार प्रेम से संबंध रखने वाले है वह सब संभोग-प्रेम में अंतर्हित है और इससे अलग नहीं किये जा सकते- जैसे आत्मप्रेम, मातृपितृ प्रेम, शिशु वात्सल्य, मैत्री, विश्व-प्रेम, विषय-वासनाओं से प्रेम और भावनाओं के प्रति श्रद्धा आदि।

मनुष्य जगत की हर वासना खासतौर पर वितैषणा, दारैषणा और लोकैषणा इन 3 भागों में बंटी है। अगर बारीकी से देखा जाए तो सारी वासनाएं सिर्फ दारैषणा में ही अंतर्भूत हो जाती है क्योंकि आकर्षण ही स्त्री की कामना का सार होता है और स्त्री-पुरुष के मिलन में आकर्षण ही परिणत हो जाया करता है।

धन, स्त्री और यश की इच्छा सिर्फ आनंद के लिए की जाती है। सारी तरह की वासनाओं की जड़ आनंद ही है और इसी को मूलप्रेरक शक्ति माना जाता है। इसका स्थूल अनुभव संभोग के द्वारा हासिल किया जा सकता है। सांसारिक जीवन में संभोग पराकाष्ठा का आनंद है इसलिए सभी तरह के आनंदों को संभोग आनंद का रूपांतर समझने में किसी तरह की आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

श्लोक (20)- गम्यचिन्ता। गमनकारणानि। उपावर्तनविधिः। कान्तानुवर्तनम्। अर्थागमोपायाः। विरक्तिलिंगानि। विरक्तप्रतिपत्तिः। निष्कासनप्रकाराः। विशीर्णप्रतिसंधानम्। लाभविशेषः। अर्थानर्थानुबन्धसंशयविचारः। वेश्याविशेषाश्च इति वैशिकं षष्ठमधिकरणम्। अध्यायाः षट्। प्रकरणानि द्वादश।।

अर्थ- हम इस वैशिक नाम के छठे अधिकरण के प्रकरणों का निर्देश करते हैं। इस अधिकरण के अंतर्गत 6 अध्याय और 12 प्रकरण दिए गए हैं-

•गम्य पुरुष विचार।
•किसी एक व्यक्ति के साथ संभोग करने के कारण।
•अपनी तरफ आकर्षित करने का तरीका।
•वेश्या का अपने प्रेमी के साथ उसकी विवाहित पत्नी की तरह व्यवहार करना।
•अर्थोपार्जन के तरीके।
•विरक्त पुरुष के निशान।
•विरक्त पुरुष की दुबारा प्राप्ति।
•निकालने के उपाय।
•निकाले हुए के साथ दुबारा संधि करना।
•लाभ विशेष का विचार।
•अर्थ, धर्म और अधर्म के अनुबंध संयम संबंधी विचार।
•वेश्याओं के भेद।
इन 12 प्रकरणों से युक्त वैशिक नाम का यह छठा अधिकरण है। इस अधिकरण के अंतर्गत वेश्याओं के चरित्र और उनके समागम उपायों को बताया गया है। आचार्य वात्स्यायन नें वेश्यागमन को एक तरह का बुरा काम माना है और उनका कहना है कि वेश्यागमन से शरीर और अर्थ दोनों का नाश हो जाता है। लेकिन वेश्या समाज का ही अंग होती है इसलिए उसका उपयोग समाज करता है। साधारण मनुष्यों और वेश्याओं की भलाई को ध्यान में रखते हुए लेखक इस अधिकरण में वेश्याओं के चरित्र का विशद् विवेचन किया है।

यह तो अनुभव की बात है कि काम एक शक्ति है और वह बहुत ज्यादा चंचल होती है। इस शक्ति का जब भी उन्नयन होता है तब तक भावों और संवेगों की उत्पत्ति होती है।

मनुष्य की जो इच्छाएं ग्रंथि का रूप ले लेती है वहीं वासना कही जाती है। वासनाओं के इसी वेग को संवेग कहते हैं। व्यक्ति के दिल में अनुकूल या प्रतिकूल वेदना ही उत्पत्ति ही भाव कहलाती है। यही भाव बढ़ते-बढ़ते संवेग का रूप धारण कर लेता है। विषयों की स्मृति से अथवा सत्ता से या फिर कल्पित विषयों से भी डर. प्रेम आदि के संवेग जागृत हुआ करते हैं।

यह बात वाकई अनुभवसिद्ध है कि विषयों के सन्निकर्ष से कोई न कोई भाव अथवा संवेग जरूर पैदा होता है।

इसका समर्थन गीता में भी किया गया है कि संग से काम होता है। जितने भी वासना व्यूह है सभी के साथ संवेग जुड़ा रहता है। हमारी चित्त वृत्ति के भावमय. ज्ञानमय और क्रियामय- तीन ही रूप होते हैं। ज्ञान के कारण ही भाव और संवेग जागृत होते हैं। मनचक्र में सोई हुई अतुल कामशक्ति, प्रेरक स्फुलिंगों को पाकर ही जागृत होते हैं। बाहय अथवा आभ्यंतर उद्दीपकों से पैदा संवेदनाएं और ज्ञानात्मक मनोभाव ही कामशक्ति के प्रेरक स्फुलिंग होते हैं। इनसे प्रेरणा पाकर ही संवेग के साथ कामशक्ति बहिर्मुख होती है।

मनुष्य के विचार चोटी पर होते हुए भी उसका हृदय हमेशा नई संवेदनाओं की तलाश में नीचे उतर आता है। हर मनुष्य को भावों को बदलने की इच्छा होती है। मनुष्य स्वभाव से ही बदलाव, सुंदरता और नएपन को चाहता है।

अगर गौर से देखा जाए तो नवीनता का दूसरा नाम अभिरुचि है। जहां पर नवीनता है वहीं रमणीयता रहती है।

रमणीयता का वही रूप है जो पल-पल में नएपन को प्राप्त करता है। संवेग के कारण ही हमारी क्रियाएं प्रतिक्षण बदला करती है। पहले तो उत्सुकता जागृत होती है और इसके बाद तृष्णा जागृत होती है। जिस समय व्यक्ति के दिल में संवेग पूरी तरह से जागृत हो जाता है उसी समय उसे 1 दिन 1 साल के जैसा लगता है।

जब संवेग के अवरोधक पूरी तरह अभिव्यक्ति नहीं होने देते तब मन में बेचैनी होने लगती है, चिंताएं बढ़ जाती है. मन में उथल-पुथल होने लगती है। सामाजिक नियमों के अनुरूप काम का निरोध-अवरोध तो जबरदस्ती करना पड़ता है। जबकि यह अनुभव समाज युग-युग से करता आ रहा है कि काम वासना पर पूरी तरह से काबू नहीं पाया जा सकता। समाज का नियंत्रण यहीं तक सीमित रहता है कि वासना शारीरिक क्रिया में परिणत न होने पाए। मानसिक द्वन्द्व भले ही मजबूत होता है।

मनुष्य जिन वासनाओं को निरोध से दबाना चाहता है वह कभी नहीं दबती, बल्कि सुलगने लगती है और किसी न किसी रूप में अपना असर डालती रहती है। असल बात यह है कि जिस बात को मना किया जाता है उसी को करने के लिए मन में बेचैनी बढ़ती रहती है। शास्त्र और समाज की दृष्टि से पराई स्त्री के साथ संबंध बनाना अधर्म है और उसके साथ संभोग करने को गलत माना जाता है। इस तरह की रोक का नतीजा यह होता है कि पराई स्त्री का रस रसोत्तम माना जाता है।

श्लोक (21)- सुभंगकरणम्। वशीकरणम्। वृष्याश्च योगाः। नष्टरागप्रत्यानयनम्। वृद्धिविधयः। चित्राश्च योगाः। इत्यौपनिषदिकं सप्तममधिकरणम्। अध्यायौ द्वौ। प्रकरणानि।

अर्थ-

•गुण, रूप आदि को बढ़ाना।
•यंत्र, तंत्र और मंत्र द्वारा वश में करना।
•वाजीकरण (काम-शक्ति बढ़ाना) प्रयोग।
•नष्टराग (खत्म हुई उत्तेजना) को दुबारा पैदा करना।
•लिंग को बढ़ाने वाले प्रयोग।
•चित्र-विचित्र प्रयोग।

इन 6 प्रकरणों से युक्त औपनिषदिक नाम का यह सातवां अधिकरण है और इसके अंतर्गत 2 अध्याय है।

श्लोक (22)- एवं षट्त्रिंशदध्यायाः। चतुःषष्टिः प्रकरणानि। अधिकरणानि सप्त। सपादं श्लोकसहस्त्रम्। इति शास्त्रस्य संग्रहः।।

अर्थ- इस प्रकार से कामसूत्र में 36 अध्याय, 64 प्रकरण, 7 अधिकरण और 1250 श्लोक है।

श्लोक (22)- संक्षेपमिमक्षुक्त्वास्य विस्तरोऽतः प्रवक्ष्यते। इष्टं हि विदुषां लोके समासव्यासभाषणम्।।

अर्थ- इस तरह अधिकरण, अध्याय, प्रकरण आदि की विषय़ सूची संक्षेप में बताकर अब उसी को विस्तार से पेश किया जा रहा है क्योंकि संसार में विद्वानों के लिए संक्षेप तथा विस्तार दोनों की जरूरत है।

आचार्य वात्स्यायन ने इस सातवें अधिकरण के अंतर्गत अधिकरण का नाम औपनिषदिक रखा है। औपनिषदिक का स्थूल अर्थ टोटका होता है। इस अधिकरण के अंतर्गत कामवासना को पूरा करने के साधन तथा भौतिक जीवन की कामयाबी के तरीकों को बहुत ही विस्तार से समझाया जा रहा है।

तंत्र औषधि आदि के रूप में जो टोटके पेश किए जा रहे हैं, उनके अंतर्गत स्वेच्छाचारिता, उच्छग्खलात और असामाजिकता, अशिष्टता, निर्दयता की भावना न पैदा हो, यह विवेक भी रखा गया है।

श्लोक- इतिश्री वात्स्यायनीय कामसूत्रे साधारणे, प्रथमधिकरेण शास्त्र संग्रह प्रथमोध्यायः।।

वात्स्यायन का कामसूत्र हिन्दी में

भाग 1 साधारणम्

अध्याय 2 त्रिवर्ग प्रतिपत्ति प्रकरण

श्लोक (1)- शतायुवैं पुरुषों विभज्य कालमन्योन्यानुबद्धं परस्परस्यानुपघातकं त्रिवर्ग सेवेत।।

अर्थ- शांत जीवन बिताने वाला मनुष्य अपने पूरे जीवन को आश्रमों में बांटकर धर्म, अर्थ, काम इन तीनों का उपयोग इस प्रकार से करें कि यह तीनों एक-दूसरे से संबंधित भी रहे तथा आपस में विघ्नकारी भी न हो।

मनुष्य की उम्र 100 साल की निर्धारित की गई है। अपने इस पूरे जीवन को सुखी और सही रूप से चलाने के लिए ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास नाम के चार भागों में बांटकर धर्म, अर्थ और काम का साधन, संपादन इस प्रकार से करना चाहिए कि धर्म,अर्थ, काम में आपस में विरोध का आभास न हो तथा वे एक-दूसरे के पूरक बनकर मोक्षप्राप्ति के साधन बन सकें।

इस संसार के सभी मनुष्य लंबे जीवन, आदर, ज्ञान, काम, न्याय, और मोक्ष की इच्छा रखते हैं। सिर्फ वेदों की शिक्षा ही ऐसी है कि जो मनुष्यों के लंबे जीवन की सुविधा के दृष्टिगत सभी व्यक्तियों को इन इच्छाओं में विवेक पैदा कराके और बराबर अधिकार दिलाकर सबको मोक्ष की ओर अग्रसर करती है।

आचार्य वात्स्यायन नें शतायुर्वे पुरुष लिखकर इस बात को साफ किया है कि कामसूत्र का मकसद मनुष्य को काम-वासनाओं की आग में जलाकर रोगी और कम आयु का बनाना नहीं बल्कि निरोगी और विवेकी बनाकर 100 साल तक की पूरी उम्र प्राप्त करना है।

लंबी जिंदगी जीने के लिए सबसे पहला तरीका सात्विक भोजन को माना गया है। सात्विक भोजन में घी, फल, फूल, दूध, दही आदि को शामिल किया जाता है। अगर कोई मनुष्य अपने रोजाना के भोजन में इन चीजों को शामिल करता है तो वह हमेशा स्वस्थ और लंबा जीवन बिता सकता है।

सात्विक भोजन के बाद मनुष्य को लंबी जिंदगी जीने के लिए पानी, हवा और शारीरिक परिश्रम भी महतवपूर्ण भूमिका निभाते है। रोजाना सुबह उठकर ताजी हवा में घूमना बहुत

लाभकारी रहता है। इसके साथ ही खुले और अच्छे माहौल में रहने और शारीरिक मेहनत करते रहने से भी स्वस्थ और लंबी जिंदगी को जिया जा सकता है।

इसके बाद लंबी जिंदगी जीने के लिए स्थान आता है दिमाग को हरदम तनाव से मुक्त रखने का। बहुत से लोग होते हैं जो अपनी पूरी जिंदगी चिंता में ही घुलकर बिता देते हैं। चिंता और चिता में सिर्फ एक बिंदू का ही फर्क होता है लेकिन इनमें भी चिंता को ही चिता से बड़ा माना गया है। क्योंकि चिता तो सिर्फ मरे हुए इंसानों को जलाती है लेकिन चिंता तो जीते जी इंसान को रोजाना जलाती रहती है। इसलिए अपने आपको जितना हो सके चिंता मुक्त रखों तो जिंदगी को काफी लंबे समय तक जिया जा सकता है।

इसके बाद लंबी जिंदगी जीने के लिए ब्रहमचर्य का पालन करना भी बहुत जरूरी होता है। योगशास्त्र के अनुसार ब्रहमचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः अर्थात ब्रहमचर्य का पालन करके ही वीर्य को बढ़ाया जा सकता है और वीर्ये बाहुबलम् वीर्य से शारीरिक शक्ति का विकास होता है। वेदों में कहा गया है कि बुद्धिमान और विद्वान लोग ब्रहमचर्य का पालन करके मौत को भी जीत सकते हैं।

सदाचार को ब्रहमचर्य का सहायक माना जाता है। जो लोग निष्ठावान, नियम-संयम, संपन्नशील, सत्य तथा चरित्र को अपनाए रहते हैं, वही लोग ब्रहमचर्य का पालन करते हुए लंबी जिदंगी को प्राप्त करते हैं। सदाचार को अपनाकर कोई भी मनुष्य अपनी पूरी जिंदगी आराम से बिता सकता है।

कोई भी बच्चा जब ब्रहमचर्य अपनाकर अपने गुरु के पास शिक्षा लेता है तो वह 4 महत्त्वपूर्ण बातें सीखता है। कई प्रकार की विद्याओं का अभ्यास करना, वीर्य की रक्षा करके शक्ति को संचय करना, सादगी के साथ जीवन बिताने का अभ्यास करना, रोजाना सन्ध्योपासन, स्वाध्याय तथा प्राणायाम का अभ्यास करना, भारतीय आर्य सभ्यता की इमारत इन्ही 4 खंभों पर आधारित है। ब्रहमचर्य जीवन को सफल बनाने वाली जितने बाती है, सभी प्राप्त होती है।

ब्रहमचर्य जो कि उम्र का पहला चरण है, जब परिपक्व हो जाए तो मनुष्य को शादी कराके गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करके अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष का सम्पादन विधिवत् करना चाहिए। यहां पर वात्स्यायन इस बात का संकेत करते हैं कि अर्थ, धर्म तथा काम का उपयोग इस प्रकार किया जाए कि आपस में संबद्ध रहें और एक-दूसरे के प्रति विघ्नकारी साबित न हो।

एक बात को बिल्कुल साफ है कि अगर सही तरह से ब्रहमचर्य का पालन किया जाए तो गृहस्थ आश्रम अधूरा, क्षुब्ध और असफल ही रहता है। इसी वजह से हर प्रकार की स्थिति में हर आश्रम में पहुंचकर उसके नियमों का पालन विधि से करने से ही कामयाबी मिलती है।

ब्रहमचर्य जीवन को गृहस्थ आश्रम से जोड़ने का अर्थ यही होता है कि वीर्यरक्षा, सदाचरण, शील, स्वाध्याय अगर ब्रहमचर्य आश्रम में सही तरह से किया गया है तो

गृहस्थआश्रम में दाम्पत्य जीवन अकलुष आनंद तथा श्रेय प्रेय संपादक बन सकता है। गृहस्थआश्रम को धर्मकर्म पूर्वक बिताने पर वानप्रस्थ का साधन शांति से और बिना किसी बाधा के हो सकता है और फिर वानप्रस्थ की साधना सन्यास आश्रम में पहुंचकर मोक्ष प्राप्त करने में मदद करती है।

श्लोक (2)- वयोद्वारेण कालविभागमाह-बाल्ये विद्याग्रहणादीनर्थान्।।

अर्थ- अब क्रमशः उम्र के विभाग के बारे में बताया गया है।
बचपन की अवस्था में विद्या को ग्रहण करना चाहिए।।

श्लोक (3)- कामं च यौवने।।

अर्थ- जवानी की अवस्था में ही काम चाहिए।

श्लोक (4)- स्थाविरे धर्मं मोक्षं च।।

अर्थ- बुढ़ापे की अवस्था में मोक्ष और धर्म का अनुष्ठान करना चाहिए।

श्लोक (5)- अनित्यत्वादायुषो यथोपपादं वा सेवेत्।।

अर्थ- लेकिन जिंदगी का कोई भरोसा नहीं है इसलिए जितना भी इसको जी सकते हो जी लेना चाहिए।

श्लोक (6)- ब्रह्मचर्यमेव त्वा विद्याग्रहणात्।।

अर्थ- विद्या ग्रहण करने के बाद ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।
धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ के 3 भेद होते हैं। बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था 3 अवस्थाएं होती है। हर इंसान की उम्र 100 साल निर्धारित की गई है। आचार्य वात्स्यायन के मुताबिक 100 वर्ष की उम्र को 3 भागों में बांटकर पुरुषार्थों का उपभोग तथा उपार्जन करना चाहिए।

वात्स्यायन के मुताबिक जन्म से लेकर 16 साल तक की उम्र को बाल्यावस्था, 16 साल से लेकर 70 साल तक की उम्र युवावस्था और इसके बाद की उम्र को वृद्धावस्था कहते हैं। इसी वजह से बाल्यावस्था में विद्या ग्रहण करनी चाहिए। युवावस्था में अर्थ और काम का उपार्जन तथा उपभोग करना चाहिए।

इसके बाद बुढ़ापे की अवस्था में मोक्ष और धर्म की प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए। इसके बावजूद आचार्य वात्स्यायन का कहना है कि जिंदगी का कोई भरोसा नहीं है। शरीर मिट्टी है इसी कारण से किसी भी समय और जब भी संभव हो जिन-जिन पुरूषार्थों की प्राप्ति हो सके कर लेनी चाहिए।

अब एक सवाल और उठता है कि जीवन को माया (जिसका कोई भरोसा नहीं होता) समझकर बाल्यावस्था में ही काम का उपार्जन और उपभोग करने की सलाह आचार्य वात्स्यायन देते हैं। इस बारे में किसी तरह की शंका आदि न पैदा हो इस वजह से उन्होने स्पष्ट किया है-

धर्म शास्त्रकारों में इंसान की उम्र को 4 भागों में बांटा है लेकिन आचार्य वात्स्यायन के मुताबिक इसकी 3 अवस्थाएं बताई है। उन्होने अपने विचारों में प्रौढ़ावस्था का जिक्र नहीं किया है। दूसरे आचार्य सन्यास लेने की सही उम्र 50 साल के बाद की मानते हैं लेकिन आचार्य वात्स्यायन ने इसकी सही उम्र 70 साल के बाद की बताई है।

विद्या ग्रहण करने की उम्र में ब्रह्मचर्य का पालन पूरी सख्ती और निष्ठापूर्वक करना चाहिए।

आचार्य कौटिल्य के मुताबिक मुंडन संस्कार हो जाने पर गिनती और वर्णमाला का अभ्यास करना चाहिए। उपनयन हो जाने के बाद अच्छे विद्वानों तथा आचार्य से त्रयी विद्या लेनी चाहिए। 16 साल तक की उम्र तक बहुत ही सख्ती से ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए और इसके बाद विवाह के बारे में सोचना चाहिए। विवाह के बाद अपनी शिक्षा को बढ़ाने के लिए हर समय बढ़े-बूढ़ों के साथ में रहना चाहिए क्योंकि ऐसे लोगों की संगति ही विनय का असली कारण होती है।

वात्स्यायन और कौटिल्य दोनों ही ने जीवन की शुरूआती अवस्था अर्थात बाल्यवस्था में विद्या ग्रहण करने और ब्रह्मचर्य पर जोर दिया है क्योंकि विद्या और विनय के लिए इन्द्रिय जय होती है इसलिए काम, क्रोध, लोभ. मान, मद और हर्ष ज्ञान से अपनी इन्द्रियों पर विजय पानी चाहिए।

श्लोक (7)- अलौकिकत्वाद्दृष्टार्थत्वादप्रवृत्तानां यज्ञदीनां शास्त्रात्प्रवर्तनम्, लौकित्वाद्दष्टार्थत्वाञ्त्र प्रवृत्तेभयश्च मांसभक्षणादिभ्यः शास्त्रादेव निवारणं धर्मः।।

अर्थ- जो लोग पारंपरिक तथा अच्छा फल देने वाले यज्ञ आदि के कामों में जल्दी शामिल नहीं होते ऐसे लोगों का शास्त्र के आदेश से इस तरह के कार्यों में शामिल होना तथा इसी जन्म में अच्छा फल मिलने के कारण जो लोग मांस आदि खाते है उनका शास्त्र के आदेश से यह सब

छोड़ देना- यही प्रवृत्ति तथा निवृत्ति रूप में 2 प्रकार का धर्म है।

महाभारत में भी इस बारे में बताया गया है धारण करने से लोग इसे धर्म के नाम से बुलाते हैं। धर्म प्रजा को धारण करते हैं जो धारण के साथ-साथ रहता है वही धर्म कहलाता है- यह निश्चित है।

इस बात से यह साबित हो जाता है कि धर्म बहुत ही व्यापक शब्द है। ग्रंथकोश में धर्म के अर्थ मिलते हैं।

- वैदिक विधि, यज्ञादि
- सुकृत या पुण्य
- न्याय
- यमराज
- स्वभाव
- आचार
- सोमरस का पीने वाला

और

- शास्त्र विधि के अनुसार कर्म के अनुष्ठान में पैदा होने वाले फल का साधन एवं रूप शुभ अदृष्ट अथवा पुण्यापुण्य रूप भाग्य।
- श्रौत और स्मति धर्म।
- विहित क्रिया से सिद्ध होने वाले गुण अथवा कर्मजन्य अदृष्ट।
- आत्मा।
- आचार या सदाचार।
- गुण।
- स्वभाव।
- उपमा।
- यज्ञ।
- अहिंसा।
- उपनिषद्।
- यमराज या धर्मराज।
- सोमाध्यायी।
- सत्संग।
- धनुष।
- ज्योतिष में लग्न से नौंवे स्थान या भाग्यभवन।
- दान।

- न्याय।

धर्म शब्द का अर्थ निरुक्तकार नियम को बताया गया है और धर्म शब्द का धातुगत अर्थ धारण करना होता है। इन दोनों अर्थों का तालमेल करने से यही अर्थ निकलता है कि जिस नियम ने इस संसार को धारण कर रखा है वह धर्म ही है।

शास्त्रों के अनुसार धर्म से ही सुख की प्राप्ति होती है और लोकमत भी इस बारे में शास्त्रों का समर्थन करता है। धन से धर्म होता है और धर्म से ही सुख मिलता है।

श्लोक (8)- तं श्रुतेर्धर्मज्ञसमवायाच्च प्रतिपद्येत।।

अर्थ- उपयुक्त सातवें सूत्र में बताए गए धर्म को ज्ञानी मनुष्य वेद से और साधारण पुरुष धर्मज्ञ पुरुषों से सीखें।

कामसूत्र के रचियता ने शास्त्रों के मत पर सहमति जताते हुए कहा है कि ज्ञानी मनुष्य को वेदों के द्वारा धर्म की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। मनु के अनुसार सारे वेद धर्म के मूल है।

श्री मद्धगवतपुराण में तो यहां तक कहा गया है कि जो वेद में कहा गया है वही धर्म है और जो उसमे नहीं कहा गया है वह अधर्म है।

आचार्य वात्स्यायन नें ज्ञानी व्यक्तियों को वेदों से धर्म आचरण सीखने की सलाह इसलिए दी है क्योंकि धर्म का तत्व गुहा में मौजूद होता है। इसी तत्व को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को आत्म-निरीक्षण, श्रवण, मनन और निद्ध्यासन करना जरूरी है। ज्ञानी वही होता है जो निहित प्रच्छन्न तत्वों को पहचानता है। कामसूत्र का मुख्य धर्म काम का असली विवेचन और विश्लेषण करना ही है। काम के तत्व को वहीं मनुष्य पहचानता है जो धर्म के तत्व को पहचानता है।

यहां पर साधारण पुरुषों से अर्थ उन लोगों से है जो स्वयं वे वेदाध्ययन, श्रवण मनन में असमर्थ है, मगर स्मृतियों द्वारा बताए गए धर्मज्ञों द्वारा निर्दिष्ट पथ पर सवार रहते हैं। यहां पर कामसूत्र के रचियता स्मृति और श्रुति दोनों का समन्वय करते हैं। मतलब यह है कि श्रुति के द्वारा जो बताया गया है वही धर्म स्मृति में भी बताया गया है।

ऐसा वह कौन सा धर्म है जो स्मृति में बताया गया है तथा श्रुतिरागव है। इसका समाधान मनुस्मृति के अंतर्गत है।

श्रुति और स्मृति के अंतर्गत बताया गया सदाचार ही परम धर्म कहलाता है। इसलिए अपने आपको पहचानने वाले व्यक्ति को हमेशा सदाचार से युक्त ही रहना चाहिए।

आचार्य वात्स्यायन नें बहुत ही कम शब्दों में बहुत बड़ी बात कही है कि विद्वान और सामान्य दोनों तरह के लोगों के लिए यह बहुत जरूरी है कि वह सदाचारी बन जाए क्योंकि सदाचार ही काम की पृष्ठभूमि है।

श्लोक (9)- विद्याभूमिहिरण्यपशुधान्य भाण्डोपस्करमित्रादीनामर्जनमर्जितस्य विवर्धनमर्थः।।

अर्थ- आचार्य वात्स्यायन ने धर्म के लक्षण बताने के बाद अर्थ की परिभाषा को पेश किया है-

विद्या, भूमि, सोना, जानवर, बर्तन, धन आदि घर की चीजें और मित्रों तथा कपड़ों, गहनों, घर आदि चीजों को धर्मपूर्वक प्राप्त करना तथा प्राप्त किए हुए को और बढ़ाना अर्थ है।

आचार्य चाणक्य नें कौटलीय अर्थशास्त्र के अंतर्गत अर्थ की परिभाषा बताते हुए बताया है कि लोगों की जीविका ही अर्थ है।

इस विषय में कौटिल्य और वात्स्यायन का एक ही मत है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र लिखने का अर्थ तत्व दर्शन को बताया है तथा यही अर्थ कामसूत्रकार का भी है।

जिस प्रकार से बुद्धि का संबंध धर्म से है उसी तरह से शरीर का संबंध अर्थ से, काम का संबंध मन से और आत्मा का संबंध मोक्ष से है। इन्ही अर्थ, धर्म, मोक्ष और काम में मनुष्य की सभी लौकिक और परलौकिक कामनाओं का समावेश हो जाता है।

कामसूत्रकार का मन्तव्य यही मालूम पड़ता है कि जिस तरह अर्थ, वस्त्र, भोजन आदि के बिना शरीर बिल्कुल सही नहीं रह सकता, संभोगकला के बिना शरीर पैदा नहीं हो सकता और शरीर के बिना मोक्ष को पाना संभव नहीं हो सकता। उसी तरह से बिना मोक्ष का रास्ता निर्धारित किए बिना काम और अर्थ को भी सहायता नहीं मिल सकती है। जब तक मोक्ष की सच्ची कामना नहीं की जा सकती तब तक अर्थ और काम का सही उपयोग नहीं हो सकता।

श्लोक (10)- तमध्यक्षप्रचाराद्वार्तासमयविद्धयो वणिग्भयश्चेति।।

अर्थ- अर्थ को सीखने के बारे में जो बताया जा रहा है उसे जानने में अक्सर बहुत से टीकाकारों को वहम होता है। कामसूत्र के रचियता का अध्यक्षप्रचार से अर्थ कौटिल्य अर्थशास्त्र के अध्यक्षप्रचार अधिकरण से है। इस अधिकरण के अंदर कौटल्य ने भूमि-सरंक्षण, राज्य-सरंक्षण, नागरिकों के सरंक्षण के नियम और दुर्गों के निर्माण का विधान, राजकर की वसूली, आय-व्यय विभाग के नियम तथा उसकी व्यवस्था, शासन प्रबंध रत्न की पारखी, धातुओं के पारखी, सुनारों के कर्त्तव्य और नियम, कठोर तथा उसके अध्यक्ष के कार्य विक्रय विभाग के नियम, युवतियों की सुरक्षा, तोलमाप का निरूपण, शस्त्रागार की व्यवस्था, चुंगी के विभिन्न प्रकार के नियम आदि 36 विषयों के बारे में बताया गया है।

श्लोक (11)- श्रोत्रत्वक्चक्षुजिह्वाघ्राणानामात्मसंयुक्तेन मनसाधिष्ठतानां स्वेषु स्वेषु विषयेष्वानुकूल्यतः प्रवृत्तिः कामः।।

अर्थ- आचार्य वात्स्यायन नें काम के लक्षण बताते हुए कहा है कि आंख, जीभ, कान, त्वचा और नाक पांचों की इंद्रियों की इच्छानुसार शब्द स्पर्श, रूप और सुगंध अपने इन विषयों में प्रवृत्ति ही काम है या फिर इन्द्रियों की प्रवृत्ति है।

भारतीय दर्शन के सिद्धान्त के अनुसार विद्या और अविद्या यही दो प्रमुख बीज है। यह दोनों जब बराबर मात्रा में एकसाथ मिलते हैं तब तीसरा बीज भी पैदा हो जाता है। वाक, मन और प्राण तीनो अव्यव तथा जगत के साक्षी माने जाते हैं। इनमें से मन को ज्यादा मात्रा में प्राण ग्रहण करता है तब वह विद्या का रूप ले लेता है और जब वह वाक को ज्यादा मात्रा में लेता है तब अविद्या कहलाता है। यही अविद्या विद्यारूप आत्मा का ऐसा स्वाभाविक विकार है जो कि बाहर के पदार्थों को अपने में मिला लिया करता है जिसके कारण से ज्ञान निर्विषयक तथा सविषयक इन रूपों में बंट जाता है।

श्लोक (12)- स्पर्शविशेषविषयात्त्वस्याबिमानिकसुखानुविद्धा फलवत्यर्थप्रतीतिः प्राधान्यात्कामः।।

अर्थ- आचार्य वात्स्यायन नें इस सूत्र में काम के बारे में बताते हुए कहा है कि आलिंगन, चुंबन आदि संभोग सुख के साथ गोल, नितंब, स्तन आदि खास अंगों के स्पर्श करने से आनंद की जो झलवती प्रतीत होती है उसकी को काम कहते हैं।

इस सूत्र में फलवती अर्थप्रतीतिः इस शब्द में गंभीर भाव मौजूद है। इसका खास मकसद सुयोग्य संतानोप्दान ही समझना सही होगा क्योंकि वेद और उपनिषद भी इसी आशय को व्यक्त करते हैं-

1- आरोहतल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनस्य पत्ये अस्मै।
इन्द्राणीव सुवुधा बुध्यमाना ज्योतिरुग्रा उपसः प्रतिजागरासि।।

अर्थ- हे वधू तू खुश होकर इस पलंग पर लेट जा और अपने इस पति के लिए संतान को पैदा कर तथा इंद्राणी की तरह हे सौभाग्यवती चतुरता से सुबह सूरज निकलने से पहले ही जाग जा।

अर्थात- संभोग क्रिया रात के समय ही होनी चाहिए जिससे मन में किसी तरह का डर, संकोच या शर्म आदि महसूस न हो।

2- देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभि।
सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या संभवे ह।।

अर्थ- विद्वान पुरुष पहले भी अपने पत्नी को प्राप्त हुए है तथा अपने शरीर को उनके शरीर से अच्छी तरह से मिलाया है। इस वजह से हे महान सुंदरता वाली तथा प्रजा को प्राप्त करने वाली स्त्री तू भी अपने पति से मिल जा।

अर्थात- संभोग क्रिया करने से पहले आलिंगन और चुंबन आदि जरूरा कर लेने चाहिए जिससे कि दोनों को ही आनंद की प्राप्ति हो सके और आलिंगन करने से शरीर में जो बिजली सी

दौड़ती है उससे न सिर्फ शर्म ही दूर होती है बल्कि एक अजीब सा ,सुकून भी मिलता है।

3- तां पूषं छिवतमामरेयस्व यस्यां बीजं मनुष्यां वपन्ति

या न ऊरू विश्रयाति यस्यामुश्नतः प्रहरेम शेषः।।

अर्थ- हे जग को पालने वाले ईश्वर, जिस स्त्री के अंतर्गत आज बीज को बोना है उसे जागृत कर। जिसके द्वारा वह हमारी इच्छा करती हुई अपनी जांघों को फैलाती हुई तथा हम इच्छा करते हुए अपने लिंग का प्रहार स्त्री की योनि पर कर सके।

अर्थात- पुरुष और स्त्री दोनों को ही अपनी खुशी से संभोग क्रिया करनी चाहिए। इस क्रिया को करते समय दोनों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि स्त्री के योनि पथ को किसी तरह की हानि न पहुंचे क्योंकि स्त्रियों की योनि में एक बहुत ही बारीक झिल्ली होती है जो अक्सर पहले ही संभोग में टूट जाती है। इसलिए पुरुष को खासतौर पर ध्यान रखना चाहिए कि स्त्री को किसी प्रकार की परेशानी न हो।

4- प्रत्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वा सविता सुशेवाः।

ऊरू लोकं सुगमत्रपन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपल्यै वधु।।

अर्थ- हे स्त्री मै तेरे पति के जरिए जांघों के बीच के योनिमार्ग को सरल बनाता हूं तथा तूझे वरुण के उस उत्कृष्ट बंधन से मुक्त करता हूं जिसको सविता ने बांधा था।

अर्थात- संभोग करते समय जो प्राकृतिक आसन होते हैं उन्ही को आजमाना चाहिए क्योंकि अप्राकृतिक आसनों को संभोग करते समय आजमाने से संतान विकलांग पैदा होती है।

5- आ रोहोरुमुपधत्स्व हस्त परिष्वजस्व जायां सुमनस्यामानः।

प्रजा कृण्वाथामिह मोदमानौ दीर्घ वामायुः सविता कृणोतु।।

अर्थ- हे पुरुष तू जांघ के ऊपर चढ़ जा, मुझे अपनी बांहों का सहारा दें, खुश होकर पत्नी को चिपका लें तथा खुशी मनाते हुए दोनों संतानों को पैदा करो जिसे सविता देव तुम्हारी उम्र को लंबी बनाए।

अर्थात- संभोग क्रिया के संपन्न होने के बाद स्त्री और पुरुष दोनों को ही स्नान कर लेना चाहिए क्योंकि इससे किसी शरीर को किसी तरह के रोग और गंदगी से मुक्ति मिलती है।

6- यद् दुष्कृतं यच्छमलं विवाहे वहतौ च यत्।

तत् संभलस्य कंबले मृज्महे दुरितं वयम्।।

अर्थ- इस वैवाहिक कार्य के द्वारा जो मलिनता हम दोनों से हुई उस कंबल के दागों को हमें छुड़ा लेना चाहिए।

अर्थात- इस बात से साफ पता चलता है कि आचार्य वात्स्यायन ने चुंबन, आलिंगन से फलवती अर्थ प्रतीति का अर्थ संतान को पैदा करने की दृष्टि रखकर ही इस सूत्र की रचना की है।

श्लोक (13)- तं कामसूत्रात्रागरिकजनसमवायाच्च प्रतिपद्येत।।

अर्थ- उस कामविज्ञान को कामसूत्र जैसे शास्त्रो से और काम व्यवहार में निपुण नागरिको के हासिल करना चाहिए।

कामसूत्र के रचियता अर्थात आचार्य वातस्यायन ने कहा है कि कामशास्त्रो का अध्ययन कामसूत्र के जैसे आचार्यों को आकर ग्रंथो से ही करना चाहिए या किसी योग्य नागरिक से। यहां पर शास्त्र और आचार्य दोनों की ही महतवत्ता बताई गई है। अगर किसी भी विषय को जानना है या उसपर योग्यता हासिल करनी है तो किसी शास्त्र और आचार्य की शरण लेनी चाहिए। गीता में कहा गया है कि जो मनुष्य शास्त्र विधि को छोड़कर इधर-उधर भागता है वह न तो सिद्धि प्राप्त कर सकता है और न ही लौकिक सुख को ही ग्रहण कर सकता है। वह कभी मोक्ष को भी पा नहीं सकता है।

श्लोक (14)- यः शास्त्रविधिमृत्स्सृज्य वर्तते कामकारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुख न परांगतिम।।

अर्थ- यहां पर कामशास्त्राकार का नागरिक जन से अर्थ है कि विद्घधजन अथवा कामशास्त्र का आचार्य़। आचार्य वही होता है जो अपने शिष्य़ों को ऐसी शिक्षा दे कि वह धर्म-अर्थ-काम को आसानी से प्राप्त कर सके। उपनिषद का ज्ञाता अपने शिष्य को पूरी तरह से शिक्षा देने के बाद उसे उपदेश देता है-

श्लोक- सत्य वद, धर्म चर स्वाध्यायान्मा प्रमदः प्रजाततुमा व्यवच्द्वेत्सीः।

अर्थ- धर्म का पालन करो, हमेशा सच बोलो, अप्रमत्त होकर स्वाध्याय करते रहो। गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के बाद संतान परंपरा को नहीं तोड़ना चाहिए। संतान परंपरा को टूटने से बचाने के लिए ब्रहमचारी को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने से पहले विधि पूर्वक कामशास्त्र का अध्ययन कर लेना चाहिए। इसके बाद विवाह करके गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिए।

अर्थ, धर्म और काम के लक्षण तथा उनको पाने के साधन बताकर वात्स्यायन इनकी उत्तरोत्तर उत्कृष्टता तथा प्रामाणिकता को बता रहे हैं-

एषां समवाये पूर्वः पूर्वो गरीयान्।।

अर्थ- काम, अर्थ और धर्म में से काम से ज्यादा श्रेष्ठ अर्थ को माना गया है तथा अर्थ से धर्म को।

सत्य, असत्य, अहिंसा, काम-क्रोध, लोभ से रहित होना, प्राणियों की प्रिय तथा हितकारिणी कोशिश में तैयार करना- यह सभी वर्णों के सामान्य धर्म माने जाते हैं।

समाज व्यवस्था और सहअस्तित्व को अहिंसा ही कायम ऱखती है. संसार में जो कुछ भी है वह सत्य है। इसी प्रकार सत्य सर्वोपरि धर्म है तथा अहिंसा को अपनाना चाहिए। अहिंसा को छोड़ देने पर सच्चाई भी हाथ नहीं लगती।

चोरी न करने को ही अस्तेय कहा जाता है। अस्तेय सत्य का ही एक भाग है। सच के इसी भाग पर समाज का व्यवहार आधारित है।

जब जरूरत से ज्यादा वस्तुओं का उपयोग करने की इच्छा नही होती है तो उसे अकाय कहते हैं अर्थात मनुष्य को अपनी इच्छाएं और जरूरतों को सीमित ही रखना चाहिए।

अहिंसा के दूसरे रूप में अक्रोध को जाना जाता है। हर व्यक्ति को अपने अंदर के कोध्र को जानना बहुत जरूरी है।

सर्वभूतहित की भावना मनुष्य के जीवन को ऊपर उठाने में सबसे ऊपर मानी जाती है। अहिंसा, अक्रोध और अकाम आदि सभी इसके अंतर्गत आते हैं। सर्वात्मभाव हमारी जिंदगी का मकसद होना चाहिए तथा सर्वभूतहित हमारी साधना होनी चाहिए।

आचार्य वात्स्यायन नें इन्ही वजहों से काम से बेहतर अर्थ और धर्म को माना है। जो मनुष्य धर्म की इन भूमिकाओं को स्वीकार कर लेता है उसके लिए काम और अर्थ करतल गत माने जाते हैं।

आचार्य वात्स्यायन का मुख्य मकसद कामशास्त्र की महत्वत्ता की व्याख्या तथा उसकी व्यवहारिक उपयोगिता व्यक्त करना है। मगर जब तक मनुष्य धर्म के तत्व को नहीं जानता तब तक वह काम की दहलीज पर नहीं पहुंच सकता है।

श्लोक (15)- अर्थश्च राज्ञः। तन्मूलत्वाल्लोकयात्रायाः। वेश्यायाश्चेति त्रिवर्गप्रतिपत्तिः।।

अर्थ- इस तरह के साधारण नियम के बाद काम, धर्म और अर्थ के विशेष नियमों का उल्लेख करते हैं। सांसारिक जीवन का अर्थ मूल सूत्र माना जाता है। इस वजह से राजा के लिए काम और धर्म से ज्यादा जरूरी अर्थ होता है। वेश्या के लिए सबसे ज्यादा काम और अर्थ की जरूरत होती है। काम, धर्म और अर्थ के लक्षण तथा उनकी प्राप्ति के साधन खत्म होते हैं।
चाणक्य के अनुसार-
धर्मस्य मूलमर्थ- धर्म का मूल धर्म है।
अर्थस्य मूलराज्यम- अर्थ काम मूल राज्य है।
राज्यमूलनिन्द्रयजय- राज्य का मूल इन्द्रिजय है।

कौटल्य के द्वारा राजा की अर्थ प्रधान वृत्ति होनी चाहिए। उसके द्वारा वह राज्य तथा धर्म दोनों को उपलब्ध कर सकता है तथा राज्य को भी मजबूत बना सकता है। कौटल्य के इन विचारों से आचार्य वात्स्यायन के विचार बहुत ज्यादा मिलते-जुलते है।

श्लोक (16)- धर्मस्यालौकिकत्वात्तदभिदायक शास्त्र युक्तम्। उपायपूर्वकत्वादर्थासिद्धः। उपायप्रतिपत्तिः शास्त्रात्।

अर्थ- आचार्य वात्स्यायन धर्म का बोध करने वाले शास्त्र की जरूरत बताते हुए कहते हैं-

धर्म परमार्थ का संपादन करता है, इस प्रकार धर्म का बोध कराने वाले शास्त्र का होना जरूरी है तथा उचित भी। अर्थसिद्धि के लिए कई तरह के उपाय करने पड़ते हैं इस वजह से इन उपायों को बताने के लिए अर्थशास्त्र की जरूरत होती है।

धर्म का ज्ञान 3 प्रकार से होता है- पहला तो धर्मात्मा विद्वानों की शिक्षा, दूसरा आत्मा की सच्चाई को जानने की इच्छा और तीसरा परमात्मा प्राकेत विद-विद्या का ज्ञान। अथर्ववेद धर्म का लक्षण बताते हुए कहता है-

यज्ञ, दम, शम, दान और प्रेमभक्ति से तीनों लोकों में व्यापक ब्रह्म की जो उपासना की जाती है उसे तप कहा जाता है। तत्व मानने, सत्य बोलने, सारी विद्याओं को सुनने, अच्छे स्वभाव को धारण करने में लीन रहना ही तप होता है।

सत्य को ऋत भी कहते है। सच्चे भाषण और सत्य की राह पर बढने से बढ़कर कोई भी धर्म नहीं है क्योंकि सत्य से ही रोजाना मोक्ष सुख और सांसरिक सुख मिलता है।

मनु, अत्रि, विष्णु, हारित, याज्ञवल्क्य, यम, संवर्त, कात्यायन, पराशर, व्यास, बृहस्पति, शंख लिखित दक्ष, गौतम, शातातप वशिष्ठ समेत यह सारे ऋषि धर्मशास्त्र को रचने वाले हैं। इन सभी धर्मशास्त्रकारों नें यही बताया है कि यज्ञ करना, इन्द्रियों पर काबू करना, सदाचार, अहिंसा, दान, वेदों का स्वाध्याय करना यही परम धर्म होता है।

धर्म का मकसद सिर्फ इतना ही होता है कि विषयोचित वृत्तियों का निरोधकर आत्मज्ञाम प्राप्त करा जाए। इस वजह से वात्स्यायन नें धर्म को पारमार्थिक कहा है।

धर्म और मोक्ष से ज्यादा अर्थ के क्षेत्र को ज्यादा व्यापक माना जाता है। जिस तरह से आत्मा के लिए मोक्ष की, बुद्धि के लिए धर्म की तथा मन के लिए काम की जरूरत होती है। इसी तरह शरीर के लिए भी अर्थ की जरूरत होती है। मनुष्य को ही धर्म और मोक्ष की जरूरत पड़ती है लेकिन काम तथा अर्थ के बिना तो मनुष्य पशु, पक्षी, कीड़े-मकोड़े तथा तृण पल्लव किसी का भी गुजारा नहीं हो सकता। काम के बिना भी एकबार काम चल सकता है और मनोरंजन को भी त्यागा जा सकता है।

जिस अर्थ पर प्राणिमात्र के शरीर स्थिर है, सभी की जिंदगी ठहरी हुई है, उस अर्थ की प्रधानता का अंदाजा अनायास किया जा सकता है। उसकी मिमांसा भी बहुत सावधानी के साथ करना चाहिए क्योंकि उसके अनुचित संग्रह के द्वारा मोक्ष मार्ग बिगड़ सकता है। आर्य सभ्यता में इस वजह से अर्थ की महत्वता स्वीकार करते हुए अर्थशास्त्रों की रचनाएं हुई है।

जीवन की हर समस्या का हल अर्थशास्त्र के द्वारा सभी दृष्टियों से किया जा सकता है। ज्ञान को पाने तथा उसकी सुरक्षा के लिए प्राचीन आचार्यों ने जितने भी अर्थशास्त्रों की रचना है, अक्सर उन सभी को इकट्ठा करके कौटल्य ने कौटलीय अर्थशास्त्र की रचना की है, इस कौटलीय अर्थशास्त्र की लेखनप्रणाली को अपनाकर वात्स्यायन ने कामसूत्र की रचना की है।

आपस्तंब धर्मसूत्र में अर्थ तथा धर्म में कुशल राजपुरोहित तक का विवरण है। धर्मसूत्रों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय धर्म अथवा विधान ही है लेकिन अर्थशास्त्र के अंतर्गत सभी आर्थिक

सिद्धांतों तथा नियमों को बताया गया है।

अर्थशास्त्र का खास विषय राजनीति है। मनुष्य के सभी लौकिक कल्याणों का स्वरूप अर्थशास्त्र के अंतर्गत मौजूद है। इसलिए जीवन के सभी प्रयोजनों की सिद्धि अर्थशास्त्र के अंतर्गत दी गई है।

श्लोक (17)- तिर्यग्योनिष्वपि तु स्वयं प्रवत्तत्वात् कामस्य नित्यत्वाच्च न शास्त्रेण कृत्यमस्तीत्याचार्याः।।

अर्थ- पशु-पक्षी को अक्सर बिना कुछ सिखाए ही संभोग क्रिया करते हुए देखा जा सकता है और काम के अविनाशी होने से यह साबित होता है कि इस विषय का शास्त्र बनाने की जरूरत नहीं है। यह कुछ आचार्यों का मत है|

श्लोक (18)- संप्रयोगपराधीनत्वात् स्त्रीपुंसयोरुपायमपेक्षते।।

अर्थ- आचार्य वात्स्यायन नें इसका समाधान करते हुए कहा है-
संभोग क्रिया करते समय हारने पर स्त्री और पुरुष को इस हार से बचने के लिए शास्त्र की अपेक्षा हुआ करती है।

जो लोग धर्म के व्यापक रूप को, उसके प्रच्छन्न राज को समझने की कोशिश नहीं करते हैं वही कामशास्त्र का विरोध करते हैं। संभोगक्रिया को स्वाभावसिद्ध मानकर संभोगक्रिया में व्यक्ति और जानवर को बराबर मानने वाले नीतिकारों नें कामशास्त्र की उपयोगिता पर ध्यान नहीं दिया है।

लेकिन आचार्य वात्स्यायन कहते हैं कि संभोग करने के लिए शास्त्रज्ञान जरूरी इसलिए है कि अगर स्त्री या पुरुष दोनों में से कोई भी भयभीत, लज्जान्वित या हारता है तो उसको उपायों की जरूरत होती है। इन उपायों को शास्त्र के अंतर्गत बताया गया है। संभोग सुख या वैवाहिक जीवन को खुशहाल बनाने के लिए संभोग की 64 कलाओं की जरूरत होती है।

अर्थशास्त्र या धर्मशास्त्र के द्वारा ऐसी कलाओं और उपायों का ज्ञान नहीं होता। इस वजह से आचार्य वात्स्यायन यह ज्ञान देते हैं कि गृहस्थ जीवन को सुखी, संपन्न और आनंददायक बनाने के लिए कामसूत्र की जानकारी जरूर होनी चाहिए।

कामशास्त्र के द्वारा इस बात की जानकारी मिलती है कि संभोग क्रिया का सर्वोत्तम तथा आध्यात्मिक उद्देश्य है पति-पत्नी में आध्यात्मिकता, मानव प्रेम तथा परोपकार और उदात्त भावनाओं का विकास। इस मकसद का ज्ञान पशु-पक्षियों, कीड़े-मकोड़े को नहीं हो सकता। जो लोग संभोग के बारे में नहीं जानते वह जानवरों की तरह संभोग किया करते हैं।

कामसूत्र के द्वारा मनुष्य को इस बात का ज्ञान होता है कि संभोग का असली सुख

क्या है। यह सुख इस प्रकार से हैं-
मनुष्य जाति का उत्तरदायित्त्व।

संभोग, संतान पैदा करना, जननेन्दिय और काम से संबधित समस्याओं के प्रति आदर्शमय भाव।
अपनी सहभागी के प्रति उच्चभाव, अनुराग, श्रद्धा और भले की कामना से इन तीनों पर निर्भर रहे।

दाम्पत्य प्रेम या अपनी प्रेमिका की आत्मियता के बिना विवाह करना या प्रेम करना असफल होता है। दम्पतियों के बीच में आपसी क्लेश, संबंधों का टूटना, अनबन, गुप्त व्यभिचार, वेश्यावृति, स्त्री का अपहरण, अप्राकृतिक व्याभिचार आदि बहुत से बुरे परिणामों और घटनाओं का असली कारण कामसूत्र को पसंद न करना या उसके बारे में जानकारी होना है।

श्लोक (19)- सा चोपायप्रतिपत्तिः कामसूत्रादिति वात्स्यायनः।।

अर्थ- पति-पत्नी के धार्मिक और सामाजिक नियम की शिक्षा कामसूत्र के द्वारा मिलती है। जो दम्पति कामशास्त्र के मुताबिक अपना जीवन व्यतीत करते है उनका जीवन यौन-दृष्टि के पूरी तरह सुखी होता है। ऐसे दम्पति अपनी पूरी जिंदगी एक-दूसरे के साथ संतुष्ट रहकर बिताते हैं। उनके जीवन में पत्नीव्रत या पतिव्रत को भंग करने की कोशिश या आकांक्षा कभी पैदा ही नहीं हुआ करती है तथा उपायों द्वारा प्राप्त वह ज्ञान कामसूत्र से प्राप्त होगा। यह वात्स्यायन का मत है।

कामसूत्र के द्वारा इस बात के बारे में जानकारी मिलती है कि संभोग की 3 मुख्य क्रियाएं होती है- विलास, सीत्कार और उपसर्ग। इनके अलावा 3 तरह के पुरुष, 3 प्रकार की स्त्रियां, 3 तरह का सम संभोग, 6 तरह का विषम संभोग, संभोग के 3 वर्ग, वर्ग भेद से 9 प्रकार के संभोग, काल भेद से 9 प्रकार के संभोग तथा संभोग के सभी 27 प्रकार है। संभोग करते समय पुरुष और स्त्री को कब और किस तरह का आनंद मिलता है, पहली बार संभोग करते समय किस तरह की परेशानी होती है, स्त्री पर स्खलन का क्या प्रभाव पड़ता है, संभोग करते समय विभिन्न प्रकार के आसनों से किस प्रकार के लाभ होते हैं।

जो लोग सेक्स क्रिया के बारे में नहीं जानते हैं वह अपनी पत्नी के साथ सेक्स करके उन्हे बहुत से रोगों की गिरफ्त में पहुंचा देते हैं। कामसूत्र द्वारा ऐसी बहुत सी विधियां पाई जाती है जो स्त्री और पुरुष को आपस में ऐसे मिला देती है जैसे कि दूध में पानी। इसलिए आचार्य वात्स्यायन के अनुसार संभोग के लिए शास्त्र उसी तरह जरूरी है जैसे अर्थ और धर्म के लिए होता है।

श्लोक (20)- तिर्यग्योनिषु पुनरावृतत्वात् स्त्रीजातेश्च, ऋतो यावदर्थ प्रवृत्तेबुद्धिपूर्वकत्वाच्च प्रवृत्तीनामनुपायः प्रत्ययः।।

अर्थ- स्त्री और पुरुषों में तो स्त्री जाति स्वाधीन और बंधनरहित होती है। जिसके कारण ऋतुकाल ही में वह तृप्त होती है। उसकी संभोग के प्रति रुचि होने से तथा विवेक बुद्धि न होने से पशु-पक्षियों के लिए स्वाभाविक संभोग की इच्छा ही काम-प्रवृत्तियों को पूरा करने के लिए सही उपाय है।

वात्स्यायन के मतानुसार मनुष्य रूप में पैदा हुई स्त्री तथा तिर्यग्योनि में पैदा हुई चिड़िया में काफी फर्क होता है। स्त्री चिड़िया की तरह न तो आजाद होती है और न विवेकशून्य। वह समाज और वंश की मर्यादाओं से बंधी रहती है। इसके अंतर्गत लोकलज्जा, कुललज्जा तथा धर्मभय रहता है। इसलिए किसी खास तरह के पुरुष का किसी खास स्त्री के साथ संबंध होने से बहुत सी मुश्किलें पैदा हो सकती है।

पशु-पक्षियों की तरह मनुष्य की संभोग करने की इच्छा सिर्फ पाशविक धर्म नहीं है। व्यक्ति को धर्म, अर्थ, संतान को पैदा करना, वंश को बढ़ाना जैसे कई तरह के मकसदों को सामने रखना पड़ता है।

इसके अलावा भी पशु-पक्षियों में भाई-बहन, माता-पिता के संबंधों का विवेक पैदा नहीं होता और न ही उनका दाम्पत्य जीवन पूरी जिंदगी रहता है। वैवाहिक जीवन को पूरी जिंदगी चैन से बिताने के लिए कामसूत्र की जरूरत होती है।

श्लोक (21)- न धर्मांश्चरेत्। एष्यल्फलत्वात्। सांशयिकत्वाच्च।।

अर्थ- धर्म का आचरण कभी न करें क्योंकि भविष्य में मिलने वाला फल ही अनिश्चित होता है। उसके मिलने में भी शक रहता है।

श्लोक (22)- को ह्यबालिशो हस्तगतं परगतं कुर्यात्।।

अर्थ- कौन सा व्यक्ति इतना मूर्ख होता है जो हाथ में आई हुई चीज को दूसरे के हाथ में सौंप देगा।

श्लोक (23)- वरमद्य कपोतः श्वो मयूरात्।।

अर्थ- अगर वह सुख मिलना निश्चित भी हो तब भी यह लोकोक्ति चरितार्थ ही होती है- कल मिलने वाले मोर से आज मिलने वाला कबूतर ही अच्छा है।

श्लोक (24)- वरं सांशयिकात्रिकादसांशयिकः कार्षापणः। इति लौकायातिकाः।।

अर्थ- नास्तिक लोगों को मानना है कि कहना है कि असंदिग्ध रूप से मिलने वाला तांबे का बर्तन शंका से प्राप्त होने वाले सोने के बर्तन से अच्छा है।

आचार्य वात्सयायन के मतानुसार-

धर्मो का पालन जरूर करना चाहिए क्योंकि धर्म का उपदेश करने वाले वेद तथा शास्त्र ईश्वर कृत तथा मंत्रदृष्टा ऋषियों द्वारा बनाए गए है इसलिए वह निश्चय ही सही हैं।

शास्त्रों के अनुसार कहे गए अभिचार कार्यों और शांति, पुष्टिवर्द्धक कामों के फलों का एहसास इसी जन्म में हो जाता है।

नक्षत्र, सूर्य, चंद्र, तारागण तथा ग्रह-चक्रों की प्रवृत्ति भी लोगों की भलाई के लिए बुद्धिवाद्-संपन्न जान पड़ती है।

मनुष्य का जीवन वर्णाश्रय धर्म पर आधारित है-

तत्र संप्रतिपत्तिमाह-

श्लोक (25) शास्त्रस्यानभिशंग-यत्वादभिचारानुव्याहारयोश्च कचित्फलदर्शनात्रक्षत्र-चंद्रसूर्यताराग्रहचक्रस्य लोकार्थ बुद्धिपूर्वकमिवप्रवेत्तेर्दर्शनाद्वर्णाश्रमाचारस्थिति-लक्षणत्वाच्च लोकयात्राया हस्तगतस्य च बीजस्य भविष्यतः सस्यार्थे त्यागदर्शनाच्चरेद्धर्मानिति वात्स्यायनः।।

अर्थ- हाथ में आए हुए बीज को अनाज मिलने की आशा में त्याग देना बेवकूफी नहीं है क्योंकि बीज से ही अन्न पैदा होता है। उसी तरह भावी मोक्ष की आशा ऱखकर धार्मिक कार्यों को करना सही है क्योंकि धार्मिक कार्यों के जरिए ही मोक्ष के रास्ते खुलते हैं।

धर्म के आचरण के लिए वात्स्यायन वेद और शास्त्र को ईश्वरकृत और ऋषि प्रणीत कहकर इन्हे सच मानते हैं। इनकी सत्यता साबित होने पर वह धर्म को भी प्रामाणिक मानते हैं।

वेद ईश्वरकृत है- इसके प्रमाण स्वयं वैदिक ग्रंथ हैं-

श्लोक- अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्।

यद्दग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वागिंरसः।।

श्लोक- त्रयोर्वेदो वायोः सामवेदः आदित्यात्।।
त्रयो वेदा अजायन्त आग्नेऋग्वेदः।
वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः।।
अग्नेऋरचो वायोर्यजूंषि सामान्यादित्यात्।
तस्माथज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्माद्जायत।।
यस्मिन्नृचः सामयजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभा विवाराः।
सस्माद्दचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपारुषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वागिंरसो मुखम्।।
अर्थ- ऊपर दिए गए उदाहरणों से ऋग्वेद, यर्जुवेद, सामवेद तथा अर्थववेद की अपौरूखषेयता और ईश्वरदत्तता साबित होती है। विधि और मंत्र जिसके अंतर्गत आते हैं वही वेद होते हैं। मीमांसा दर्शन ने इस बात पर अपने विचार प्रकट किए हैं कि प्रेरणादायक लक्षण वाला अर्थ ही धर्म है। विधि तथा मंत्र का एक ही अर्थ है क्योंकि प्रेरणात्मकों को मंत्र कहते हैं।

इसके द्वारा आचार्य वात्स्यायन के इस मत की पुष्टि हो जाती है वेद ईश्वरीय ज्ञान है तथा उनमें धर्मोपदेश है।

यहां पर वात्स्यायन का अर्थ शास्त्र से मतलब धर्मशास्त्र है। धर्मशास्त्र में यादों को प्रमुख माना जाता है। मनु, याज्ञवल्क्य आदि साक्षात् कृतधर्मा ऋषि-मुनियों नें यादों में जो धर्म के उपदेश दिए हैं वह सार्वकालिक तथा सार्वजनीन है। उनका धर्म उपदेश यथार्थ की पृष्ठभूमि पर सामाजिक अभ्युदय तथा पर लौकिक कल्याण के लिए हुआ है। इस प्रकार यादें सच है, उनके द्वारा बताए गए रास्ते पर धर्म का आचरण करना सही है।

मनुष्य जो भी शुभ या अशुभ कार्य करता है शास्त्रों के द्वारा उसका फल उसे इसी जिंदगी में भुगतना पड़ता है। मीमांसा के अनुसार श्रुति के द्वारा जिन कार्यों को करने की आज्ञा मिलती है, वह रोजाना, नैमित्तिक तथा काम्य 3 तरह के होते हैं। होम करना रोजाना का काम है। नैमित्तिक कामों को किसी खास मौकों पर किया जाता है। यह दोनों आदेश के रूप में होते हैं और इनको करना जरूरी होता है। उत्तेजित कार्यों को खास किस्म की इच्छाओं को पूरा करने के लिए किया जाता है। हर कार्य में कुछ अंश प्रधान तथा कुछ अंश गौण होते हैं।

यज्ञ होम का प्राकृतिक और लाभकारी फल वायुमंडल की शुद्धि है। जलती हुई आग अपने ऊपर की ओर आस-पास की वायु को गर्म करके ऊपर की ओर धकेलती है। शून्य को पूरा करने के लिए इधर-उधर से ठंडी हवा हवन-कुंड की तरफ खिंची आती है तथा गर्म होकर वह भी ऊपर आ जाती है। यह चक्कर चलता रहता है।

इस क्रिया में इधर-उधर उड़ते हुए, पड़े हुए खतरनाक जीव कुंड से गुजरते हुए भस्म हो जाते हैं। इस परिवर्तन क्षेत्र में जो कोई भी बदलाव होता है उससे वायुमंडल तुरंत ही शुद्ध होता है, मंत्रों का पाठ यज्ञ करने वाले को समुन्नत बनाता है। मीमांसाकार के मत से यज्ञों का जो फल है उसका संबंध वर्तमान से हैं।

धर्म जिज्ञासा पूर्वमीमांसा का विषय है तथा धर्म से वह कार्य अभिप्रेत है जिसकी विधियां वेदों में बताई जा चुकी है। इन कर्मों का फल जरूर मिलता है। यही नही कर्म अगर किए जाते है तो वह फल की प्राप्ति के लिए ही किए जाते हैं। मीमांसा के मतानुसार फल मनुष्य के लिए है और मनुष्य कर्म के लिए है। कर्म की प्रेरणा भले ही इसलिए की जाती है कि ऐसा कर्म कल्याणकारी होता है। हमारी नैतिक भावना की मांग यह है कि पुण्य काम तथा सुख का मेल हो। पाप और दुख का मेल हो। इस सिद्धान्त का पक्षपाती जेमिनी है। शुभ कामों के फल शुभ और अशुभ कामों के फल अशुभ मिलते हैं।

ग्रह, नक्षत्र आदि की प्रवृत्ति मनुष्य की भलाई की लिए ही होती है। श्रुति के मंत्र भाग के अंतर्गत कई स्थानों पर बताया गया है कि सूर्य ही सब प्रजाओं का प्राण है। सूर्य के द्वारा ही सभी प्राणियों की उत्पत्ति हुई है। विषुवत् वृत्त तथा क्रांति वृत का शरीर की बनावट के बहुत ही गहरा संबंध होता है। इस विषय के बारे में ऐतरेय ब्राह्मण में बताया गया है-

इस तरह प्रमाण से यह साबित हो जाता है कि मनुष्य की आत्मा अधेन्द्र अर्थात इंद्र का आधा भाग है। अपूर्णता के रह जाने पर मनुष्य आदि प्राणियों का आत्मा इन्द्र अपने आपको अपूर्ण व अपर्याप्त समझता है क्योंकि अकेला प्राणी कभी भी संभोग नहीं कर सकता- तस्मादेकाली न रमते तद द्वितीयमैच्छत। वह मनोविनोद क्रीडा़ के लिए दूसरे प्राणी का इच्छा करता है। यह जीवन का नियम होता है।

इसीलिए बहुत सी श्रुतियों का कहना है कि जब तक पुरुष दार-संग्रह विवाह नहीं करता तब तक उसे अधूरा ही माना जाता है। वाजिश्रुति का कहना है कि जिन दो स्त्री-पुरुषों का मिलन होता है वह तब तक पूरे नहीं हो सकते जब तक एक अर्द्ध का दूसरे से मिथुन संबंध नहीं हो जाता है। यह स्त्री आधा भाग होती है। इस तरह से जब तक स्त्री को हासिल नहीं किया जा सकता तब तक सृष्टि नहीं हो सकती है।

आचार्य वात्स्यायन का यह कथन संकुचित और सीमित नजरिये से अलग ही मालूम पड़ता है कि वर्णाश्रम धर्म पर ही लोगों को जीवन निर्भर करता है। उनके मतानुसार ब्राह्मणादि वर्ण सिर्फ मनुष्य में ही नहीं बल्कि पूरे संसार में वर्तमान चेतन-अचेतन सभी पदार्थ 4 वर्णों में बंटे हैं।

जो पदार्थ आग्नेय होते हैं वह ब्राह्मण कहलाते हैं। जो ऐन्द्र होते हैं वह क्षत्रिय होते हैं। जो विश्वदेव हैं वह वैश्य माने जाते हैं और पूष देवता के पदार्थों को शुद्र कहते हैं। सारे पदार्थ अग्नि, इंद्र, विश्वदेव और पूष देवता से अलग-अलग प्रकृति के पैदा होते हैं। इसलिए सारे पदार्थों में क्षत्रिय, ब्राह्मण आदि चारों विभाग होते हैं। मानव की इसी बुनियादी प्रकृति को ध्यान में रखकर आचार्य वात्स्यायन ने कामसूत्र में पुरुष और स्त्री का बंटवारा, गुण-कर्म, स्वभाव के मुताबिक करके उनके लिए संभोगकला का निर्देश दिया है।

धर्म को नैतिक जीवन की बुनियाद माना गया है। धर्म का आचरण कभी त्याज्य नहीं कहा जा सकता है। छान्दोग्य उपनिषद के द्वारा सनत्कुमार का कहना है कि सुख में समग्र है, अल्प (थोड़े) में सुख नहीं है। नैतिक जीवन यज्ञ जैसा है और वह दूसरों को अपने अंदर

मिला लेता है।

छान्दोग्य उपनिषद धर्म की उपमा वृक्ष से करते हुए कहते हैं- धर्म के 3 स्कंध है-

- दान, यज्ञ और अध्ययन पहला स्कंध है।
- तप दूसरा सकंध है।
- ब्रह्मचारी का आचार्य कुल में तीसरा सकंध है।

दान देना, यज्ञ करना और वेदादि धर्मग्रंथों को पढ़ना मनुष्य का कर्त्तव्य बनता है। स्वाध्याय एक तरह का तप ही है। यज्ञ और दान वहीं मनुष्य कर सकता है जो कमाने की काबलियत रखता हो और जो कमाए उसमें से कुछ भाग दान देने की इच्छा रखता हो। अगर जीवन को सफल बनाना है तो उसके लिए तप जरूरी है। अच्छे आचरण जन्म लेते ही नहीं मिलते बल्कि उन्हे तो हमे दूसरों से लेना पड़ता है और इसके लिए हर मनुष्य को कोशिश करनी पड़ती है। यही कोशिश करने का समय ब्रह्मचारी आचार्य कुल में बिताता है जहां पर नैतिक आचार की बुनियाद पड़ती है।

वात्स्यायन के मतानुसार मनुष्य यज्ञ, तप, दान, स्वाध्याय और शुद्ध आचरण का परित्याग न करके रोजाना इनका उपयोग करता रहे।

श्लोक (26)- नार्थाश्चरेत्। प्रयत्नतोऽपि ह्येतेऽनुष्ठीयमाना नैव कदायित्म्युः अननुष्ठीयमाना अपि यद्दच्छया भवेयुः।।

अर्थ- इसके अंतर्गत शास्त्राकार अर्थ प्राप्ति के संबंध में निम्नलिखित 5 सूत्रों द्वारा संदेह प्रकट करते हैं-

अर्थ को प्राप्त करने के लिए कभी भी प्रयत्न नहीं करना चाहिए क्योंकि कभी-कभी पूरी तरह प्रयत्न करने के बाद भी अर्थ प्राप्त नहीं होता और कभी-कभी बिना कोशिश के भी प्राप्त हो जाता है।

श्लोक (27)- तत्सर्वं कालकारितमिति।।

अर्थ- क्योंकि यह सब कुछ समय पर निर्भर करता है।

श्लोक (28)- काल एव हि पुरुषानर्थानर्थयोर्जयपराजययोः सुखदुःखयोश्च स्थापयति।।

अर्थ- समय ही है जो मनुष्य को अर्थ और अनर्थ में, जय और पराजय में तथा सुख और दुख में रखता है।

श्लोक (29)- कालेन बेलिरेन्द्रः कृतः। कालेन व्यपरोपितः। काल एव पुनरप्येनं कर्तेति कालकारणिकाः।।

अर्थ- समय ही था जिसने बालि को इंद्र के पद पर ला दिया और फिर समय ने ही उसे इंद्र के पद से गिरा दिया। इस तरह समय ही सब कर्मों का कारण है।

श्लोक (30)- पुरुपकारपूर्वक्त्वाद् सर्व प्रवृत्तीनामुपायः प्रत्ययः।।

अर्थ- आचार्य स्वयं ही निम्नलिखित 2 सूत्रों द्वारा अपनी ही शंका का हल कर रहे हैं- लेकिन सब कामों के मेहनत द्वारा कामयाब होने के उपायों को समझ लेना भी काम साधन कारण है।

श्लोक (31)- अवश्र्यभाविनोऽप्यर्थस्योपायपूर्वकत्वादेव। न निष्कर्मणो भद्रमस्तीती वात्स्यायनः।।

अर्थ- आचार्य वात्स्यायन के मतानुसार किसी भी काम को कोशिश करने पर पूरा हो जाने के बाद यह साबित होता है कि निक्कमा आदमी कभी भी सुख को प्राप्त नहीं कर सकता।

आचार्य वात्स्यायन के इस सिद्धान्तवाद का समर्थन ऐतरेय ब्राह्मण के शुनः शेप आख्यान के उस संचरण गीत से होता है जिसका अंतरा चरैति बरैवैति है। इस गीत को इंद्र नें पुरुष के वेश में आकर राजा हरिश्चंद्र के मृत्यु के मुंह में पहुंचे पुत्र को सुनाकर उसे लंबी जिंदगी प्रदान की थी।

आचार्य वात्स्यायन और ऐतरेय ब्राह्मण के विचारों की अगर एक-दूसरे से तुलना की जाए तो उससे यही पता चलता है कि चलने का नाम ही जीवन है, रुकने का नहीं। ऐसे लोग ही अर्थ की प्राप्ति कर सकते हैं। जीवन के रास्ते पर आलसी बन कर रुक जाना, थककर सो जाना बहुत बड़ी मूर्खता है। उपनिषदों में कहा गया है कि जो व्यक्ति अपने जीवन में किसी तरह के संकल्प पर अडिग नहीं रहते वह कभी भी आत्मदर्शन नहीं कर सकते। जो मनुष्य़ पूरी तरह से डटकर अर्थ को प्राप्त करने की राह पर चल पड़ता है, इंद्र भी उन्ही के साथ है- इंद्र इधरत सखा।

श्लोक (32)- न कामाश्चरेत्। धर्मार्थयोः प्रधानयोरेवमन्येषां च सतां प्रत्यनीकत्वात्। अनर्थजनसंसर्गमसद्‌वयवसायमशौचमनायतिं चैते पुरुषस्य जनयन्ति।।

अर्थ- आचार्य वात्स्यायन धर्म और अर्थ के बाद अब काम पर अपने मत दे रहे हैं-

काम का आचरण नहीं करना चाहिए क्योंकि यह प्रधानभूत धर्म तथा अर्थ और सज्जनों के विरुद्ध है। काम मनुष्य में बुरे आदमियों का संसर्ग, बुरे काम, अपवित्रता और कुत्सित परिणामों को पैदा किया है।

श्लोक (33)- तथा प्रमादं लाघवमप्रत्ययमग्राह्यतां च।।

अर्थ- तथा काम-प्रमाद, अपमान, अविश्वास को पैदा करता है तथा कामी आदमी से सभी लोग नफरत करने लगते हैं।

श्लोक (34)- बहवश्च कामवशगाः सगणा एव विनष्टाः श्रूयन्ते।।

अर्थ- तथा ऐसा सुना जाता है कि बहुत से काम के वश में आकर अपने परिवार सहित समाप्त हो जाते हैं।

श्लोक (35)- यथा दाण्डक्यो नाम भोजः कामाद् ब्राह्मणकन्यामभिमन्यमानः सबन्धुराष्ट्रो विननाश।।

अर्थ- जिस प्रकार भोजवंशी दांडक्य नाम का राजा काम के वश में होकर ब्राह्मण की कन्या से संभोग करने के कारण अपने परिवार और राज्य के साथ नष्ट हो गया।

श्लोक (36)- देवराजश्चाहल्यामतिबलश्च कीचको द्रौपदी रावणश्च सीतामपरे चान्ये च बहवो द्‌दश्यन्ते कामवशगा विनष्टा इत्यर्थचिंतकाः।।

अर्थ- रावण सीता पर, इन्द्र अहल्या पर और महाबली कीचक द्रौपदी पर बुरी नजर रखने के कारण कामुक भाव रखने के कारण नष्ट हुए। ऐसे और भी बहुत से लोग है जो काम के वश में होकर नष्ट होते देखे गए हैं।

श्लोक (37)- शरीरस्थितहेतुत्वादाहारसधर्माणो हि कामाः। धर्मार्थयोः।।

अर्थ- आचार्य वात्स्यायन अपने स्वयं के दिए हुए तर्क का समाधान करते है-

शरीर की स्थिति का हेतु होने से काम भोजन के समान है और धर्म तथा अर्थ का फलभूत भी यही है।

आचार्य वात्स्यायन ने दिए गए 6 सूत्रों के द्वारा उदाहरण प्रस्तुत करके यह बताया है कि काम मनुष्य को बुरा, घिनौना और दयनीय बनाकर आखिरी में उसका नाश कर देता है। इस तर्क के मत में जो उदाहरण दिए गए है वह अर्थ चिंतकों के हैं।

कौटिल्य ने भी राजा को इंद्रियों को जीतने वाला बनने का मशवरा देते हुए लिखा है कि विद्या तथा विनय का हेतु, इंद्रियों को जीतने वाला है। इसलिए क्रोध, काम, लोभमान, मद, हर्ष और ज्ञान से इंद्रियों को जीतना चाहिए।

वात्स्यायन का कामसूत्र हिन्दी में

भाग 1 साधारणम्

अध्याय 3 विद्यासमुद्देशः

श्लोक-1. धर्मार्थाग्ङविद्याकालाननुपरोधयन् कामसूत्रं तदग्ङविद्याश्च पुरुपोऽधीयीत 1।।

अर्थ- अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र और इनके अंगभूत शास्त्रों के अध्ययन के साथ ही पुरुष को कामशास्त्र के अंगभूत शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए।

व्याख्या-

मुनि वात्स्यायन ने इस श्लोक में "विद्या" शब्द का उपयोग किया है। धर्मविद्या और उसकी अंगभूत विद्याओं को पढ़ने के साथ कामशास्त्र तथा उसकी अंगभूत विद्याओं को पढ़ने की सलाह दी गयी है।

यह चौदह विद्याओं तथा सात सिद्धांतों पर आधारित है। इन्ही चौदह विद्याओं के विभिन्न प्रकार बाद में विभिन्न शास्त्रों तथा सिद्धांतों के रूप में प्रचलित हुए।

याज्ञवल्यक्य स्मृति के द्वारा चार वेद, छह शास्त्र, मीमांसा, न्याय पुराण तथा धर्मशास्त्र- इन चौदह विद्याओं का वर्णन है। इसके अतिरिक्त पाञ्चरात्र, कापिल, अपरान्तरतम, ब्रहिष्ट, हैरण्यगर्भ, पाशुपात तथा शैव इन सात सिद्धांतों का भी उल्लेख है।

इन चौदह विद्याओं के 70 महातंत्र और 300 शास्त्र हैं। महातंत्र की तुलना में शास्त्र बहुत छोटे और संक्षिप्त होते हैं। यह विद्या विस्तार शिव (विशालाक्ष) ने कहा था। महाभारत में यह लिखा है कि ब्रहम के तिवर्ग शास्त्र से शिव (विशालाक्ष) ने अर्थ भाग अर्थात अर्थशास्त्र को भिन्न किया था। उस अर्थभाग में विभिन्न विषय थे। बाद में उन्ही के आधार पर विभिन्न

ग्रंथ लिखे गये हैं जो निम्न हैं-

1. लोकायव शास्त्र।
2. धनुर्वेद शास्त्र।
3. व्यूह शास्त्र।
4. रथसूत्र।
5. अश्वसूत्र।
6. हस्तिसूत्र।
7. हस्त्वायुर्वेद्।
8. शालिहोत्र।
9. यंत्रसूत्र।
10. वाणिज्य शास्त्र।
11. गंधशास्त्र।
12. कृषिशास्त्र।
13. पाशुपताख्यशास्त्र।
14. गोवैध।
15. वृक्षायुर्वेद।
16. तक्षशास्त्र।
17. मल्लशास्त्र।
18. वास्तुशास्त्र।
19. वाको वाक्य।
20. चित्रशास्त्र।
21. लिपिशास्त्र।
22. मानशास्त्र।
23. धातुशास्त्र।
24. संख्याशास्त्र।
25. हीरकशास्त्र।
26. अदृष्टशास्त्र।
27. तांत्रिक श्रति।
28. शिल्पशास्त्र।
29. मायायोगवेद।
30. माणव विद्या।
31. सूदशास्त्र।
32. द्रव्यशास्त्र।
33. मत्स्यशास्त्र।

34. वायस विद्या।
35. सर्प विद्या।
36. भाष्य ग्रंथ।
37. चौर शास्त्र।
38. मातृतंत्र।

उपर्युक्त दी गयी 38 तरह की विद्याएं हैं। इनमें से अधिकतर जानकारी कौटलीय अर्थशास्त्र में मिलती है।

वेद के छह अंगों में से एक अंग कल्प को माना गया है। कल्प शब्द का अर्थ विधि, नियम तथा न्याय है। ऐसे शास्त्र जिनमें विधि, नियम तथा न्याय के संक्षिप्त, सारभूत तथा निर्दोष वाक्य समूह रहते हैं उन्हें कल्पसूत्र के नाम से जाना जाता है।

कामसूत्र के तीन भेद हैं- श्रौत, गृह्य और धर्म। श्रौतसूत्रों में यज्ञों के विधान तथा नियम के बारे में वर्णित किया गया है। गृहसूत्रों में जन्म से लेकर मृत्यु तक के सभी लौकिक और पारलौकिक कर्तव्यों तथा अनुष्ठानों के बारे में उल्लेख किया गया है। धर्मसूत्रों में अनेक धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक कर्तव्यों और दायित्वों का वर्णन किया गया है।

कामसूत्र के समान ही धर्मशास्त्र भी श्रौत धर्मशास्त्र तथा स्मार्त धर्मशास्त्र- दो भागों में विभाजित है। सभी धर्मशास्त्रों का मूल उद्देश्य कर्मफल में विश्वास, पुनर्जन्म में विश्वास तथा मुक्ति पर आस्था है। इन्हीं तीन बातों का विस्तार जीवन के विभिन्न अंगों तथा उद्देश्यों को लेकर धर्मशास्त्रों में किया गया है।

आचार्य वात्स्यायन का उद्देश्य अर्थशास्त्र तथा धर्मशास्त्र के इसी व्यापक क्षेत्र का अध्ययन है। इसके साथ ही कामसूत्र और उसके अंगभूतशास्त्र (संगीत शास्त्र) के लिए वह सलाह देता है।

अर्थशास्त्र तथा धर्मशास्त्र की ही तरह कामशास्त्र में भी जीवन के लिए उपयोगी भावनाओं तथा प्रतिक्रियाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है। वात्स्यायन के अनुसार अर्थशास्त्र तथा धर्मशास्त्र के अध्ययन के अलावा कामसूत्र का अध्ययन भी जीवन के लिए उपयोगी होता है।

आचार्य वात्स्यायन ने कामशास्त्र न लिखकर उसके स्थान पर कामसूत्र लिखा है। इसका कारण यह है कि जिस प्रकार अर्थशास्त्र के क्षेत्र में केवल कौटलीय अर्थशास्त्र ही एक उपलब्ध ग्रंथ है। उसी तरह से कामशास्त्र के क्षेत्र में प्राचीन ग्रंथों का अभाव है जिसके कारण वात्स्यायन का यह कामसूत्र ही विशेष उपयोगी है।

कामसूत्रकार कामसूत्र के साथ-साथ इसके अंगभूतशास्त्र अर्थात संगीत को भी पढ़ने की सलाह देता है। जिस प्रकार कामशास्त्र सृष्टि-रचना का सहायक है। उसी प्रकार से संगीतशास्त्र की नादविद्या भी संसार के रहस्यों को समझने का एक मुख्य साधन है। संगीत के स्वरों से देवता, ऋषि, ग्रह, नक्षत्र, छंद आदि का गहरा संबंध होता है।

वाद्ययंत्रों को संगीत का सहायक माना जाता है। संगीत ब्रह्मनंद का सहोदर माना गया

है। अर्थ, धर्म तथा काम को त्रिवर्ग कहा जाता है। यह त्रिवर्ग ही मोक्ष प्राप्ति का साधन होता है। वात्स्यायन के अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, कामशास्त्र तथा संगीत शास्त्र के अध्ययन की सलाह का अर्थ मोक्ष की प्राप्ति समझना चाहिए।

श्लोक-2. प्राग्यौवनात् स्त्री। प्रत्ता च पत्युरभिप्रायात ।।2।।

अर्थ- इन चौदह विद्याओं तथा सात सिद्धांतों का अध्ययन केवल पुरुष को ही नहीं, बल्कि स्त्री को भी करना चाहिए।

व्याख्या-

युवावस्था से पहले ही स्त्री को अपने पिता के घर में अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, कामशास्त्र तथा संगीतशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए। विवाह होने के बाद स्त्री को अपने पति से आज्ञा लेकर ही कामसूत्र का अध्ययन करना चाहिए।

श्लोक-3. योषितां शास्त्रग्रहणस्याभावादनर्थकमिहशास्त्रे स्त्रीशासनामित्याचार्या।।3।।

अर्थ- शास्त्रों का अध्ययन करना स्त्रियों के लिए सही नहीं है। इस सूत्र में बारे में

कुछ आचार्यों के अनुसार स्त्रियों में शास्त्र का भ्रम समझने का अभाव होता है। इसलिए स्त्रियों को कामसूत्र और उसकी अंगभूत विद्याओं का अध्ययन कराना निरर्थक होता है।

श्लोक -4. प्रयोगग्रहणं त्वासाम। प्रयोगस्य च शास्त्रपूर्वककत्वादिति।।4।।

अर्थ- आचार्य वात्स्यायन जी कहते हैं कि स्त्रियों को कामसूत्र के सिद्धांतों के क्रियात्मक प्रयोग का अधिकार तो है ही तथा क्रियात्मक प्रयोग के बिना शास्त्र के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकती है। इसलिए स्त्रियों के लिए कामसूत्र का अध्ययन करना अनुचित होता है।

सेक्स क्रिया का उद्देश्य केवल वासनाओं की ही तृप्ति ही नहीं है, बल्कि इससे भी अधिक इसका सामाजिक और आध्यात्मिक उद्देश्य होता है। यह सच है कि स्त्रियों में सेक्स की स्वाभाविक प्रवृत्ति रहती है लेकिन यह प्रवृत्ति तो सभी जीवधारियों में होती है। पशु-पक्षी, जलीय प्राणी आदि सभी जीव सेक्स क्रियाएं करते हैं। मनुष्य तथा अन्य प्राणियों में एक ही अंतर होता है वह है विवेक का। यदि मनुष्य भी विवेकशून्य होकर सेक्स क्रिया करने लगे तो उसमें और पशुओं में कोई भी अंतर नहीं रह जाता है।

मनुष्य और अन्य जीवधारियों के बीच के इसी अंतर को दूर करने के लिए तथा काम के

चरम उद्देश्य की पूर्ति के लिए कामशास्त्र की शिक्षा स्त्री तथा पुरुष दोनों को समान रूप से आवश्यक होती है। सेक्स क्रिया के समय जब अगर-मगर की स्थिति उत्पन्न होती है तो उस समय कामसूत्र की शिक्षा ही उपयोग में आती है।

तस्माच्छांस्त्र प्रमाणन्ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

अर्थ- इस प्रकार की दुविधा में शास्त्र ही सही मार्ग दिखाता है। जिस स्त्री को कामशास्त्र अर्थात सेक्स संबंधी संपूर्ण जानकारी होती है उस स्त्री को अपने कौर्मावस्था में या दाम्पत्य जीवन में उचित और अनुचित का विचार करने में आसानी होती है। ऐसी स्त्री कभी-भी दुविधा में नहीं फंस सकती है।

मीमांसा दर्शन के अनुसार जिस प्रकार विद्युत शक्ति में आकर्षण और विकर्षण की शक्ति होती है लेकिन यदि दोनों को परस्पर मिला दें तो प्रकाश तथा गति संचालित होती है। उसी प्रकार पुरुष तथा स्त्री के परस्पर सहयोग से सृष्टि का संचालन होता है। यदि दोनों अलग-अलग होते हैं तो निष्क्रिय बने रहते हैं।

कामशास्त्र का यही उद्देश्य है कि वह स्त्री तथा पुरुष को परस्पर मिलाकरके मोक्ष प्राप्ति का अधिकारी बना दें और वह स्त्री तथा पुरुष की की अनुचित क्रियाओं, पाशुविक प्रवृत्तियों को नियंत्रित करके दोनों की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, लौकिक तथा पारलौकिक उन्नति में योग दे तथा दोनों को परस्पर मिला करके उनकी पूर्णता का आभास करा दे।

स्त्री तथा पुरुष दोनों में कामसूत्र के अध्ययन के द्वारा ज्ञान प्राप्ति से मधुर संबंध स्थापित होते हैं। इससे उनके मन में पवित्रता बनी रहती है। जिससे सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन की सुव्यवस्था, सुख़, स्वास्थ्य तथा शांति बनी रहती है।

इसके अतिरिक्त स्त्री तथा पुरुषों में मौखिक भेद होने से दोनों की प्रकृति तथा प्रवृत्ति में भी अंतर होता है। कामशास्त्र के अध्ययन के द्वारा स्त्री को पुरुष की तथा पुरुष को स्त्री की प्रकृति के बारे संपूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार वे दोनों अलग होते हुए एक-दूसरे में पानी की तरह मिल जाते हैं।

वात्स्यायन के अनुसार कामशास्त्र का अध्ययन स्त्री के लिए बहुत ही आवश्यक है।

श्लोक-5. तत्र केवलमिहैब। सर्वत्र हि लोके कतिचिदेव शास्त्रज्ञः। सर्वजनविषयश्स प्रयोगः।।5।।

अर्थ- इसके अंतर्गत शास्त्र के परोक्ष प्रभाव को विभिन्न उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत कर रहे हैं। कामशास्त्र के लिए यह बात नहीं है, बल्कि संसार में सभी शास्त्रों की संख्या कम है तथा शास्त्रों के बताए हुए प्रयोगों के बारे में सभी लोगों को जानकारी है।

श्लोक -6. प्रयोगस्य च दूरस्थमपि शास्त्रमेव हेतु।।6।।

अर्थ- तथा दूर होते हुए भी प्रयोग का हेतु शास्त्र ही है।

श्लोक -7. अस्ति व्याकरणमित्यवैयाकरण अपि याज्ञिका ऊहं क्रतुषु।।7।।

अर्थ- व्याकरण शास्त्र के होते हुए भी अवैयाकरणा याज्ञिक यज्ञों में विकृतियों का उचित प्रयोग करते हैं।

श्लोक -8. अस्ति ज्यौतिषमिति पुण्याहेषु कर्म कुर्वते।।8।।

अर्थ- ज्योतिष शास्त्र के होते भी ज्योतिष न जानने वाले लोग व्रत पर्वों में संपन्न होने वाले विशेष कार्यों को किया करते हैं।

श्लोक -9. तथाश्वारोहा और गजारोहाश्वाश्वान् गजांश्वानधिगतशास्त्रा अपि विनयन्ते।।9।।

अर्थ- तथा महावत और घुड़सवार हस्तिशास्त्र तथा शालिहोत्र का अध्ययन किये बगैर साथियों तथा घोड़ों को वश में कर लेते हैं।

श्लोक-10. तथास्ति राजेति दूरस्था अपि जनपदा न मर्यादामतिवर्तन्ते तद्वदेतत।।10।।

अर्थ- जिस प्रकार दंड देने वाले राजा की उपस्थिति मात्र से प्रजा राज्य के नियमों का उल्लंघन नहीं करती है। उसी प्रकार यह कामशास्त्र है जिसका अध्ययन किए बगैर ही लोग उसका प्रयोग करते हैं।

श्लोक-11. सन्तपि खलु शास्त्रप्रहतबुद्धयो गणिका राजपुत्र्यो महामादुहितरश्च।।11।।

अर्थ- स्त्रियों में शास्त्र को समझने की अक्ल नहीं होती है। इस आक्षेप का निराकरण करते हुए सूत्रकार का मत है-

इस प्रकार की मणिकाएं, राजपुत्रियां तथा मंत्रियों की पुत्रियां हैं जोकि सिर्फ प्रयोगों में ही नहीं बल्कि कामशास्त्र तथा संगीतशात्र में भी कुशल और निपुण होती हैं।

राजपुत्रियों तथा मणिकाओं के कामशास्त्र तथा उसके अंगभूत संगीतशास्त्र की व्यावहारिक तथा तात्विक शिक्षा प्रदान करने की भारतीय प्रणाली बहुत ही प्राचीन है। भारतीय समाज में वेश्याओं का सम्मान उनके रूप, आयु तथा आकर्षण के साथ ही उनकी विद्वता तथा योग्यता

आदि कारणों से होता है।

बौद्ध जातकों की "अम्बपाली" तथा भास के नाटक दरिद्र चारुदत्त की "बसंतसेना" रूप तथा गुण में आदर्श स्त्री मानी जाती थी। उनके इसी रूप तथा गुण के कारण बड़े-बड़े राजा-महाराजा और साधु-संत उनके पास जाया करते थे।

राजपुत्रियों में उज्जयिनी के राजा प्रद्योत-वण्डमहासेन की पुत्री वासवदत्ता बहुत अधिक सुंदर और कला में कुशल थी। राजा प्रद्योत-वण्डमहासेन ने कौशाम्बी के राजा उदायन को छल करके इसलिए बंदी बनाया था ताकि वह उसकी पुत्री को वीणा बजाने की अद्वितीय कला सिखा दे।

प्राचीन काल में सामाजिक शिष्टाचार तथा कला की शिक्षा प्राप्त करने के लिए राजा अपने पुत्र और पुत्रियों को मणिकाओं के पास भेजते थे।

भारतीय समाज में विद्वान और रूपवती गणिकाएं आदरणीय ही नहीं बल्कि मंगल सामग्री भी मानी जाती थी। इसी कारण से उन्हें मंगलामुखी के नाम से भी जाना जाता है। ज्योतिष के अनुसार यात्रा के समय गणिकाओं का दर्शन मंगलसूचक माना जाता है। किसी भी यज्ञ के होने पर ऋषि-मुनि गणिकाओं को भी बुलाते थे।

भारतीय समाज में गणिकाएं एक प्रमुख अंग मानी जाती हैं। शासन और जनता दोनों के द्वारा गणिकाओं को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। इस प्रकार की गणिकाएं और ललित कला तथा संगीत कला की जानकारी रखने वाले व्यक्ति बड़े-बड़े लोगों के संतानों को शिक्षा देने का कार्य करते हैं।

श्लोक -12. तस्माद्वैसिकाञ्जनाद्रहसि प्रयोगाञ्छास्त्रमेकदेशं वा स्त्री गृह्वीयात।।12।।

अर्थ- इस कारण से स्त्री को एकांत स्थान पर सभी प्रयोगों की, कामशास्त्र की, संगीतशास्त्र की और इनके आवश्यक अंगों की शिक्षा अवश्य ग्रहण करनी चाहिए।

श्लोक -13. अभ्यासप्रयोज्यांश्च चातुःषष्टिकान् योगान् कन्या रहस्येकाकि-न्यभसेत।।13।।

अर्थ- अभ्यास के द्वारा सफल होने वाली चौसठ कलाओं के प्रयोगों का अभ्यास कन्या को किसी एकांत स्थान पर करना चाहिए।

श्लोक -14. आचार्यास्तु कन्यानां प्रवृत्तपुरुषसंप्रयोगा सहसंप्रवृद्धा धात्रेयिका। तथाभूता वा निरत्ययसम्भाषणा सखी। सवयाश्च मातृष्वसा। विस्त्रब्धा तत्स्थानीया वृद्धदासी। पूर्वसंसृष्टा वा भिक्षुकी। स्वसा च विश्वास च विश्वास- प्रयोगात।।14।।

अर्थ-

विश्वस्त स्त्री-शिक्षिका का निर्देश करते हैं-

निम्नलिखित 6 प्रकार की आचार्याओं में से कोई एक, कन्याओं की आचार्य हो सकती है।

1. पुरुष के साथ सेक्स का अनुभव प्राप्त कर चुकी हो ऐसी, साथ में पली-पोसी खेली हुई धाय की पुत्री।

2. साफ दिल की ऐसी सखी या सहेली जो सेक्स का अनुभव प्राप्त कर चुकी हो।

3. अपने समान उम्र की मौसी।

4. मौसी के ही समान विश्वासपात्र बूढ़ी दासी।

5. अपनी बड़ी बहन।

6. परिवार, शील स्वभाव से पहले से परिचित, भिक्षुणी- संयासिनी।

पुरुषों को कामशास्त्र की शिक्षा देने के लिए आचार्य तथा शिक्षक आसानी से मिल जाते हैं लेकिन स्त्रियों को कामशास्त्र की शिक्षा देने के लिए आचार्य तथा शिक्षक मुश्किल से उपलब्ध हो पाते हैं। इसीलिए आचार्य वातस्यायन ने उपरोक्त 6 प्रकार की औरतों में किसी एक औरत से कामशास्त्र की शिक्षा लेने की सलाह दी है।

कामशास्त्र की शिक्षा के लिए इस प्रकार के निर्वाचन में विश्वास, आत्मीयता तथा पवित्रता निहित है। इस प्रकार की औरतो को सीखने और सिखाने में किसी भी प्रकार का शर्म या संकोच नहीं होता है। कामसूत्र के शास्त्रकारों ने उपरोक्त 6 प्रकार की आचार्यों का चुनाव कामशास्त्र की 64 कलाओं की शिक्षा के लिए किया है। इन 64 कलाओं की शिक्षा के लिए निरंतर अभ्यास करने की आवश्यकता होती है।

इसके अलावा कामसूत्र के शास्त्रकारों ने यह भी सलाह दी है कि यदि किसी कारणवश सभी 64 कलाओं की शिक्षा प्राप्त करने के लिए कोई योग्य आचार्य न मिल सके, तो जितना भी समय मिले उतने ही में और आधी, तिहाई, चौथाई कलाओं को जानने वाली जो भी आचार्य मिल सके उससे कामसूत्र की कलाएं सीख लेनी चाहिए।

श्लोक -15. गीतम्1, वाद्यम्2, नृत्यम्3, आलेख्यम्4, विशेषकच्छेद्यम्5, तण्डुलकुसुमवलिविकाराः6, पुष्पास्तरणम्7, दशनवसनाङ्गरागः8, मणिभूमिकाकर्म9, शयनकचनम्10, उदकवाद्यम्11, उदकाघातः12, चित्राश्च13, योगाः,माल्यग्रथनविकल्पाः14, शेखरकापीडयोजनम्15, नेपथ्यप्रयोगाः16, कर्णपत्रभंगा17, गन्धयुक्तिः18, भूषणयोजनम्19, ऐन्द्रजालाः20, कौचुमारश्च योगाः21, हस्तलाघवम्22, विचित्रशाकयूषक्ष्यविकारक्रिया23, पानकरसरागासवयोजनम24,

सूचीवानकर्माणि25, सूत्रक्रीड़ा26, वीणाडमरुवाद्यानि27, प्रहेलिका28, प्रतिमाला29, दुर्वाचकयोगाः30, पुस्तकवाचनम्31, नाटकाख्यायिकादर्शनम्32, काव्यसमस्यापूरणम्33, पट्टिकावाननेत्रविकल्पाः34, तक्षकर्माणि35, तक्षणम्36, वास्तुविद्या37, रूप्यपरीक्षा38, धातुवादः39, मणिरागाकरज्ञानम्40, वृक्षायुर्वेदयोगाः41, मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधिः42, सुकसारिकाप्रलापनम्43, उत्सादने संवाहने केशमर्दने च कौशलम44, अक्षरमुष्टिकाकथनम्45, म्लेच्छितविकल्पाः46, देशभाषाविज्ञानम्47, पुष्पशकटिका48, निमित्तज्ञानम्49, यंत्रमातृका50, धारणमातृका51, सम्पाठ्यम्52, मानसी काव्यक्रिया53, अधिधानकाशः54, छंदोज्ञानम्55, क्रियाकल्पः56, छलितकयोगाः57, वस्त्रगोपनानि58, द्यूतविशेषः59, आकर्षक्रीडा60, बालक्रीडनकानि61, वैनयिकीनाम्62, वैजयिकीनाम्63, व्यायामिकीना64, च विद्यानां, इति चतुःषष्टिरंगविद्याः। कामसूत्रस्यावयावयविन्यः।।15।।

अर्थ- इसके अंतर्गत आपको उपायभूत 64 कलाओं के नाम बताये जा रहे हैं-

1. गीतम- गाना
2. वाद्यम- बाजा बजाना
3. नृत्यम्- नाचना
4. आलेख्यम्- चित्रकारी
5. विशेषकच्छेद्यम्- भोजन के पत्तों को तिलक के आकार में काटना।
6. ताण्डुलकुसुमवलिविकाराः- पूजन के लिए चावल तथा रंग-बिरंगे फूलों को सजाना।
7. पुष्पास्तरणम्- घर अथवा कमरों को फूलो से सजाना।
8. दशनवसनाड्गरागः कपड़ों, शरीर और दांतों पर रंग चढ़ाना।
9. मणिभूमिका कर्म- फर्श पर मणियों को बिछाना।
10. शयनकचनम्- शैया की रचना।
11. उदकावाद्यम्- पानी को इस प्रकार बजाना कि उससे मुरजनाग के बाजे की ध्वनि निकले।
12. उदकाघात- जल क्रीड़ा करते समय कलात्मक ढंग से छींटे मारना।
13. चित्रयोगा- अनेक औषधियों, तंत्रों तथा मंत्रों का प्रयोग करना।
14. माल्यग्रथनविकल्पा- विभिन्न प्रकार से मालाएं गूथना।
15. शेखर कापीड योजनम्- आपीठकं तथा शेखरक नाम के सिर के आभूषणों को शरीर के सही अंगों पर धारण करना।
16. नेपथ्यप्रयोगाः- अपने को या दूसरे को सुंदर कपड़े पहनाना।
17. कर्णपत्रभंगः - शंख तथा हाथीदांत से विभिन्न आभूषणों को बनाना।
18. गन्धयुक्तिः- विभिन्न द्रव्यों को मिलाकर सुगंध तैयार करना।
19. भूषणयोजनम्- आभूषणों में मणियां जड़ना।
20. ऐन्द्रजालायोगः- इन्द्रजाल की क्रीणाएं करना।
21. कौचुमारश्च योगाः- कुचुमार तंत्र में बताए गये बाजीकरण प्रयोग सौंदर्य वृद्धि के प्रयोग।
22. हस्तलाघवम- हाथ की सफाई।

23. विचित्रशाकयूषक्ष्यविकारक्रिया- विभिन्न प्रकार की साग-सब्जियां तथा भोजन बनाने की कला।

24. पानकरसरागासवयोजनम- पेय पदार्थों का बनाने का गुण।

25. सूचीवानकर्माणि- जाली बुनना, पिरोना और सीना।

26. सूत्रक्रीड़ा- मकानों, पशु-पक्षियों तथा मंदिरों के चित्र हाथ के सूत से बनाना।

27. वीणाडमरुवाद्यानि- वीणा, डमरु तथा अन्य बाजे बजाना।

28. प्रहेलिका- पहेलियों को बूझना।

29. प्रतिमाला- अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता का कौशल।

30. दुर्वाचकयोग- ऐसे श्लोक कहना जिनके उच्चारण तथा अर्थ दोनों कठिन हो।

31. पुस्तकवाचनम- किताब पढ़ने की कला।

32. नाटकाख्यायिकादर्शनम- नाटकों तथा ऐतिहासिक कथाओं के बारे में जानकारी।

33. काव्यसमस्यापूरणम- कविताओं के द्वारा समस्यापूर्ति।

34.पट्टिकावाननेत्रविकल्पाः- बेंत और सरकंडे आदि की वस्तुएं बनाना।

35. तक्षकर्माणि- सोने-चांदी के गहनों तथा बर्तनों पर विभिन्न प्रकार की नक्काशी।

36. तक्षणम- बढ़ईगीरी।

37. वास्तुविद्या- घर का निर्माण करना।

38. रूप्यपरीक्षा- मणियों तथा रत्नों की परीक्षा।

39. धातुवाद- धातुओं को मिलाना तथा उनका शोधन करना।

40.मणिरागाकरज्ञानम- मणियों को रंगना तथा उन्हें खानों से निकालना।

41.वृक्षायुर्वेदयोगा- पेड़ों तथा लताओं की चिकित्सा, उन्हें छोटा और बड़ा बनाने की कला।

42.मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधिः- भेड़ा, मुर्गा तथा लावको को लड़ाना।

43. सुकसारिकाप्रलापनम- तोता-मैना को पढ़ाना।

44. उत्सादने संवाहने केशमर्दने च कौशलम- शरीर तथा सिर की मालिश करने की कला।

45.अक्षरमुष्टिकाकथनम- सांकेतिक अक्षरों के अर्थ की जानकारी प्राप्त कर लेना।

46. म्लेच्छितविकल्पा- गुप्त भाषा विज्ञान।

47. देशभाषाविज्ञानम- विभिन्न देशों की भाषाओं की जानकारी।

48. पुष्पशकटिका- फूलों से रथ, गाड़ी आदि बनवाना।

49. निमित्तज्ञानम- शकुन-विचार।

50. यंत्रमातृका- स्वयं चालित यंत्रों को बनाना।

51. धारणमातृका- स्मरण शक्ति बढ़ाने की कला।

52. सम्पाठ्यम्- किसी सुने हुए अथवा पढे हुए श्लोक को ज्यौ का त्यौं दोहराना।

53. मानसी काव्यक्रिया- विक्षिप्त अक्षरों से श्लोक बनाना।

54. अधिधानकोश - शब्दकोषों की जानकारी।

55.छंदोज्ञानम- छंदों के बारे में जानकारी।
56. क्रियाकल्प- काव्यालंकार की जानकारी।
57. छलितकयोगा- बहुरूपियापन।
58.वस्त्रगोपनानि- छोटे कपड़े इस प्रकार पहने कि वह बड़ा दिखाई दे तथा बड़े कपड़े इस प्रकार पहने कि वह छोटा दिखाई दे।
59. द्यूतविशेषः- विभिन्न प्रकार की द्यूत क्रियाओं की कला।
60. आकर्षक्रीडा- पासा खेलना।
61. बालक्रीडनकानिः- बच्चों के विभिन्न खेलों की जानकारी।
62.वैजयिकीनां विद्यानां ज्ञानम- विजय सिखाने वाली विद्याएं, आचार शास्त्र।
63.वैजयिकीनां विद्यानां ज्ञानम- विजय दिलाने वाली विद्याएं तथा आचार्य कौटिल्य का अर्थशास्त्र।
64. व्यायामिकीना विद्यानां ज्ञानम - व्यायाम के बारे में जानकारी।
कामसूत्र की अंगभूत ये 64 विद्याएं हैं।

आचार्य वात्स्यायन ने यहां पर कलाओं का वर्गीकरण नहीं बल्कि उनका परिगणन किया है। कलाओं की गणना के बारे में सबसे अधिक प्रचलित तथा प्रसिद्ध संख्या 64 है। तंत्रग्रंथों और शुक्रनीति में भी कलाओं की संख्या 64 ही है। कहीं-कहीं इन कलाओं का उल्लेख सोलह, बत्तीस, चौसठ तथा चौसठ से अधिक नाम से भी मिलता है।

प्रसिद्ध ग्रंथ ललित विस्तार में कामकला के रूप में 64 नाम दिये गये हैं तथा कामकला के रूप में 23 नाम हैं। प्रबंधकोष के अंतर्गत इसकी संख्या 72 दी गयी है। इसके अलावा कला विलास पुस्तक में सबसे अधिक कलाओं के बारे में जानकारी दी गयी है, जिनमें से 32 धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति, 64 लोकोपयोगी कलाएं तथा 32 मात्सर्य शील प्रभाव तथा मान की है।

लोगों को आकर्षित करने की 10 भेषज कलाएं, 64 कलाएं वेश्याओं की तथा 16 कायस्थों की कलाएं हैं। इसके अतिरिक्त गणकों की कलाओं तथा 100 सार कलाओं का वर्णन है।

अन्य कामशास्त्रियों तथा आचार्य वात्स्यायन द्वारा बतायी गयी कलाओं पर ध्यान देने से यह जानकारी प्राप्त होती है कि उस समय के आचार्य किसी भी विषय अथवा कार्य़ में निहित कौशल को कला के अंतर्गत रखते हैं। आमतौर पर ललित तथा उपयोगी दोनों प्रकार की कलाएं कलाकोटि में परिगणित होती हैं।

कला शब्द का सबसे पहले प्रयोग ऋग्वेद में हुआ है। विभिन्न उपनिषदों में भी कला शब्द का प्रयोग मिलता है। इसके अलावा वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्वेद), सांख्यायनब्राह्मण, तैत्तरीय, शतपथ ब्राह्मण, षडविंशब्राह्मण और आरण्यक आदि वैदिक ग्रंथों में भी कला शब्द का प्रयोग मिलता है। भरत के नाट्य शास्त्र से पहले कला शब्द का अर्थ ललित कला में प्रयोग नहीं हुआ था। कला शब्द का वर्तमान अर्थ जो है उस अर्थ का द्योतक शब्द शास्त्र से पहले शिल्प शब्द था।

संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रंथों में शिल्प शब्द कला के अर्थ में प्रयोग किया जाता रहा है। पाणिनी द्वारा रचित अष्टाध्यायी तथा बौद्ध ग्रंथों के अंतर्गत शिल्प शब्द उपयोगी तथा ललित दोनों प्रकार की कलाओं के लिए होता है।

आचार्य वात्स्यायन ने कामसूत्र की जिन 64 कलाओं का वर्णन किया है। उन्हें कामसूत्र की अंगभूत विद्या कहते हैं।

आचार्य वात्स्यायन ने कामसूत्र में जिन 64 कलाओं का वर्णन किया है। उन सभी कलाओं के नाम का उल्लेख यजुर्वेद के तीसवें अध्याय में किया गया है।

यजुर्वेद के इस अध्याय में 22 मंत्रों का उल्लेख किया गया है जिनमें से चौथे मंत्र से लेकर बाइसवें मंत्र तक उन्हीं कलाओं तथा कलाकारों के बारे में जानकारी दी गयी है।

श्लोक-16. पान्चालिकी च चतुःषष्टिरपरा। तस्याः प्रयोगानन्ववेत्य सांप्रयोगिके वक्ष्यामः।। कामस्य तदात्मकत्वात।।16।।

अर्थ- पहले वर्णित 64 कलाओं से भिन्न पांचाल देश की 64 कलाएं हैं। वे पांचाली कलाएं कामात्मक हैं, इसलिए उनका वर्णन आगे साम्प्रयोजिक अधिकरण में किया गया है।

श्लोक-17. आभिरभ्युच्छ्रिता वेश्या शीलरूपगुणान्विता। लभते गणिकाशब्दं स्थानं च जनसंसदि।।17।।

अर्थ- गुणशील तथा रूप संपन्न वेश्या इन कलाओं के द्वारा उत्कर्ष प्राप्त कर गणिक का पद प्राप्त करती है और समाज में आदर प्राप्त करती है।

श्लोक-18. पूजिता या सदा राज्ञा गुणवद्धिश्च संस्तुता। प्रार्थनीयाभिगम्या च लक्ष्यभूता च जायते।।18।।

अर्थ- इन गणिकाओं का सम्मान राजा करता है, उसकी प्रशंसा गुणवान लोगों के द्वारा होती है। आम लोग उससे कलाएं सीखने के लिए प्रार्थना करते हैं। इस प्रकार से वह सभी का केन्द्र विन्दु बन जाती है।

श्लोक-19. योगज्ञा राजपुत्री च महामात्रसुता तथा। सहस्त्रान्तःपुरमपि स्वनशे कुरुते पतिम्।।19।।

अर्थ- राजाओं और मंत्रियों की जो पुत्रियां कामसूत्र की 64 कलाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेती हैं। वे हजारों स्त्रियों से सेक्स करने की क्षमता रखने वाले पुरुष को भी वश में कर लेती हैं।

श्लोक-20. तथा पतियोग च व्यसनं दारुणा गता। देशोन्तरेऽपि विद्याभिः सा सुखेनैव जीवति।।20।।

अर्थ- ऐसी स्त्रियां किसी कारणवश पति से विमुक्त होने पर या किसी संकट में फंस जाने पर उसे अंजान जगह पर जाना पड़े तो वह अपनी कामसूत्र की 64 कलाओं के द्वारा अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत कर सकती है।

श्लोक-21. नरः कलासु कुशलो वाचालश्चाटुकारकः। असंस्तुतोऽपि नारीणां चित्तमाश्चेव चिन्दति।।21।।

अर्थ- ऐसी स्त्रियों की कला की विशेषता बताने के बाद पुरुषों के गुणों के बारे में बताया जा रहा है। बातचीत करने में निपुण, चाटुकार पुरुष यदि कुशल कलाकार हो तो अपने से घृणा करने वाली स्त्रियों का मन भी आकर्षित कर लेता है।

श्लोक-22. कलानां ग्रहणादेव सौभाग्यमुपजायते। देशकालौ त्वपेक्ष्यासां प्रयोगः संभवेत्र वा।।22।।

अर्थ- कलाओं की जानकारी प्राप्त कर लेने से ही सौभाग्य जागृत हो जाता है लेकिन देश तथा समय प्रतिकूल हो तो इन कलाओं के प्रयोगों की सफलता में आशंका हो जाती है।

वात्स्यायन का कामसूत्र हिन्दी में

भाग 1 साधारणम्

अध्याय 4 नागरकवृन्त प्रकरण (रसिकजन के कार्य)

श्लोक-1. गृहीतविद्यः प्रतिग्रहजयक्रयनिर्शाधिगतैरर्थैरन्वयागतैरुभयैर्वा गार्हस्थ्यमधिगम्य नागरकमवृत्तं वर्तेत।।1।।

अर्थ- विद्या अध्ययन के समय ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। इसके बाद पैतृक संपत्ति या दान, विजय, व्यापार और श्रम आदि द्वारा धन एकत्र करके विवाह करके गृह प्रवेश करना चाहिए। इसके बाद सामान्य नागरिकों की तरह जीवन व्यतीत करना चाहिए।

व्याख्या- कामसूत्र तथा उसकी अंगभूत विद्याएं ही विद्या प्राप्त करने का मुख्य अर्थ हैं। आचार्य वात्स्यायन के अनुसार अपहरण बलात्कार द्वारा स्त्री को प्राप्त करने की कोशिश अव्यवहारिक तथा असामाजिक है। ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए कामशास्त्र तथा 64 कलाओं का अध्ययन करने के बाद ही ग्रहस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिए।

विवाह करने के बाद घर चलाने के लिए धन की आवश्यकता होती है जिसके लिए उचित उपाय करने चाहिए। इसीलिए वात्स्यायन ने स्वयं कहा है कि कामसूत्र और 64 कलाओं की शिक्षा प्राप्त करने के बाद ही अपनी कुशलता और श्रम के द्वारा धन कमायें। धन कमाने के बाद ही विवाह करें। इसके अलावा पैतृक संपत्ति का प्रयोग भी कर सकते हैं। गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के बाद सभ्य लोगों के समान जीवनयापन करें।

श्लोक-2. नगरे पत्तने खर्वटे महित वा सज्जनाश्रये स्थानम्। यात्रावशाद्वा।।2।।

अर्थ- विवाह करने के बाद नागरिकों को नगर में, खर्वट में, पत्तन में या महत में सभ्य लोगों के बीच निवास करना चाहिए। इसके अतिरिक्त जीवन चलाने के लिए परदेश में रह सकते हैं।

श्लोक-3. तत्र भवनमासत्रोदकं वृक्षवाटिकावद्विभक्तकर्मकक्षं द्विवास-गृहं कारयेत्।।3।।

अर्थ- वहां जल के निकट वृक्षवाटिका के पास घर का निर्माण करें जिसमें रहने के लिए दो वासस्थान रखना चाहिए। एक बहि प्रकोष्ठ, दूसरा अंतः प्रकोष्ठ।

आचार्य वात्स्यायन नागरिकों को ऐसे स्थान पर रहने की सलाह देते हैं जहां पर जीवन संबंधी सभी उपयोगी साधन उपलब्ध हो। इस प्रकार की सुविधा पत्तन (राजधानी) में, नगरों

(महतीपुरी) में, खर्वट (तहसील) में तथा महत अर्थात जिले के केन्द्रों में आसानी से उपलब्ध होते हैं।

इन साधनों में जहां पर दैनिक उपयोग और उपभोग की चीजें उपेक्षित हैं। वहीं लोगों को इससे अधिक प्राकृतिक सौंदर्य की अपेक्षा होती है। इसलिए लोग घरों का निर्माण प्रकृति के आस-पास करवाते हैं।

श्लोक-4. बाह्ये च वासगृहे सुश्लक्ष्णमुभयोपधानं मध्ये विनतं शुक्लोत्तरच्छदं शयनीयं स्यात। प्रतिशय्यिका च। तस्य शिरोभागे कूर्चस्थानम् वेदिका च। तत्र रात्रिशेषमनलेपनं माल्यं सिक्थ करण्डकं सौगन्धिकपुटिका मातुलुड़गत्वचस्ताम्बूलाहनि च स्यूः। भूमौ पतद्ग्रहः नागदंतावसक्ता वीणा। चित्रफलकम्। वर्तिकासमुद्रकः। य कश्चतपुस्तकः कुरण्टकामालाश्च नातिदूरे भूमौ वृत्तास्तरणं समस्तकम्। आकर्षकफलकं द्यूतफलकं च। तस्य बहिः क्रीड़ाशकुनिपञ्जराणि। एकांते च तक्षतक्षणस्थानमन्यासां च क्रीडानाम्। स्वास्तीर्णा पेड्खदोला वृक्षवाटिकायां सप्रच्छाया। स्थण्डिलपीठिका च सकुसुमेति भवनविन्यासः।।4।।

अर्थ- यहां बहिःप्रकोष्ठ की सजावट का निर्देश दिया गया है-

घर के बाहरी प्रकोष्ठ (जिसमें नागरिक स्वयं रहता है) में अधिक नर्म, मुलायम, सुगंधित बिस्तर लगा होना चाहिए। सिर तथा पैर दोनों तरफ तकिये लगे होने चाहिए। पलंग बीच में से झुकी होनी चाहिए। पलंग के ऊपर साफ, स्वच्छ चादर होनी चाहिए तथा ऊपर मच्छरदानी तनी होनी चाहिए।

उसी पलंग के बराबर में उसी के समान एक और पलंग लगी होनी चाहिए जोकि सेक्स क्रिया के लिए है। उस पलंग के सिरहाने पर पलंग की ऊंचाई के बराबर वेदिका रखी हो। वेदिका में रात का बचा हुआ लेपन, फूल-मालाएं, मोमबत्ती, अगरबत्ती, मातृलुंग वृक्ष की छाल तथा पान रखे हुए होने चाहिए। पलंग के पास जमीन पर पीकदान (थूकने का बर्तन) रखा हो। हाथी-दांत की खूंटी पर टंगी हुई वीणा, चित्र बनाने का त्रिफलक, तुलिका तथा रंग के डिब्बे, सजी हुई किताबें और शीघ्र न मुरझाने वाली कुरण्टक पुष्प की माला हो।

पलंग के पास की जमीन पर एक गोल आसन बिछा होना चाहिए जिसके पीछे की तरफ सिर तथा पीठ के लिए एक गाव तकिया अथवा मनसद हो। बाहरी प्रकोष्ठ के बाहर खूंटियों पर पालतू पक्षियों के पिंजरे टंग रहे हो और किसी एकांत स्थान पर अपद्रव्य बनाने तथा बढ़ईगीरी का कार्य करने तथा अन्य प्रकार के आमोद-प्रमोद के लिए स्थान हो। वृक्षवाटिका भी साफ, सुंदर और सुविधायुक्त होना चाहिए।

श्लोक-5. स प्रातरुत्थाय कृतनियतकृत्यः गृहीतदंतधावनः, मात्रयानुलेपनं धूपं स्त्रजमिति च गृहीत्वा सिक्थकमलक्तकं च, दृष्टवादर्शे मुखम्, गृहीत्मुखावासताम्बूलः, कार्याण्यनुतिष्ठेत।।5।।

अर्थ- इस सूत्र में नागरिक की दिन तथा रात की क्रियाओं का वर्णन किया गया है। सबसे पहले उस नागरिक को सुबह जागकर, शौच आदि क्रियाओं से फ्री होकर, दांतों को साफ करके उचित मात्रा में मस्तक में चंदन आदि का लेप करके, बालों को धूप से सुवासित कर तथा सुगंधित माला आदि को पहनकर सिक्थम (मोम) तथा अलरक्तक (अलता) का उपयोग करके शीशे में चेहरे को देखकर सुगंधित तम्बाकू आदि खाकर दैनिक कार्यों को करना चाहिए।

श्लोक-6. नित्यं स्नानम्। द्वितीयकमुत्सादनम। तृतीयकः फेनकः। चतुर्थकमायुष्यम। पञ्चमकं दशमकं वा प्रत्यायुष्यमित्यहीनम्। सातत्याच्च संवृतकक्षास्वेदापनोदः।।6।।

अर्थ- नियमित स्नान करें, हर दूसरे दिन पूरे शरीर की मालिश करें। तीसरे दिन साबुन का प्रयोग करें। चौथे दिन दाढ़ी तथा मूंछों के बाल कटवायें तथा पांचवे दिन या दसवें दिन गुप्त अंगों के बाल सावधानी से काटे। ढकी हुई कांखों के पसीनों को हमेशा सुगंधित पाउडर का प्रयोग करके सुखायें।

कामसूत्र को पढ़ने से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में भारत के नागरिक विद्या तथा कला का उपयोग जिस सावधानी के साथ करता था, उस प्रकार वह धन का उपयोग नहीं करता था। उसकी दिनचर्या से प्रकट होता है कि वह सुबह जागने के बाद हाथ-मुंह धोकर दातून से दांतों को साफ करता था। उसकी दातून भी कुछ विशेष प्रकार की होती थी जिसका वर्णन वृहतसंहिता में मिलता है-

सर्वप्रथम दातून को उसके पुरोहित एक सप्ताह पहले सुगंधित द्रव्यों से सुवासित करने की प्रक्रिया शुरू कर देते थे। इसके लिए दातून को हरड़युक्त तरल में एक सप्ताह तक भिगोकर रख देते थे। इसके बाद इलायची, दालचीनी, तेजपात, अंजनु, शहद और कालीमिर्च से सुवासित जल में डुबोते थे। इस प्रकार से तैयार की गयी दातून को मंगलदायिनी समझा जाता था। उस समय के लोग दातून का उपयोग सिर्फ दांतों की सफाई के लिए न करके मांगलिक कार्यों के लिए भी किया करते थे। इसलिए वे अपने पुरोहितों से यह पूछ लेते थे कि कौन-से पेड़ की दातून किस विधि से करें।

दातून के बाद लोग लेप का प्रयोग करते थे। कामसूत्र के विशेषज्ञों के अनुसार शरीर पर सिर्फ चंदन का ही लेप लगाना चाहिए। विभिन्न ग्रंथों में यह बताया गया है कि चंदन को शरीर पर उल्टा-सीधा लेप लेना नियमों के विपरीत है।

प्राचीन समय में लोग चंदन के अतिरिक्त अन्य विभिन्न प्रकार के द्रव्यों के भी अनुलेप तैयार करते थे। इनमें कस्तूरी, अगुरू और केसर आदि के साथ दूध अथवा मलाई के लेप प्रमुख हैं। इस प्रकार के लेपों की सुगंध काफी देर तक होती है। इन लेपों के प्रयोग से शरीर के अंग

स्निग्ध और चिकने होते हैं।

अनुलेपन के बाद केशों को धूप से धूपित करने की प्रक्रिया की जाती थी, ऐसा करने पर बाल नहीं उड़ते थे, बाल सफेद नहीं होते हैं तथा चिकने और मुलायम बने रहते हैं। वराहमिहिर के ग्रंथ वृहत्संहिता में उल्लेख मिलता है कि अच्छे से अच्छे कपड़े पहनों, सुगंधित माला धारण करो तथा कीमती गहनों से अपने शरीर के अंगों को सजा लो। लेकिन यदि बाल सफेद हो गये हो तो सभी आभूषण फीके पड़ जाएंगे। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में भारत के निवासी बालों को काला बनाये रखने के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहते थे।

वृहत्संहिता के अंतर्गत बालों को धूप देने की निम्न विधि बतायी गई है। कपूर तथा केसर या कस्तूरी से सुगंधित उतारी जाती थी, उस सुगंधि से बालों को सुवासित करके कुछ देर तक उन्हें छोड़ दिया जाता है। इसके बाद स्नान किया जाता था।

बालों के सुवासित हो जाने के बाद लोग फूलों की माला धारण करते थे। माला को बनाने और फूलों के चुनाव में भी उसकी रुचि होती थी। उस समय के लोग चम्पाजुही और मालती आदि फूलों की मालाएं धारण करते थे लेकिन सेक्स क्रिया करने के समय विशेष प्रकार से तैयार की गयी माला धारण करते थे ताकि सेक्स के दौरान आलिंगन, चुंबन आदि के समय फूल गिरकर मुरझाएं नहीं।

इसके बाद वह शीशे में अपना मुंह देखता था। प्राचीन काल के धनी लोगों के घरों में कांच के शीशे का उपयोग नहीं होता है। सोने अथवा चांदी के शीशों का उपयोग किया जाता है। शीशे में चेहरा देखने के बाद लोग पान खाते हैं।

भारतीय संस्कृति में ताम्बुल को सांस्कृतिक द्रव्य माना जाता है। ताम्बुल का उपयोग साधारण स्वागत समारोह से लेकर देवताओं की पूजा तक में किया जाता है। वराहमिहिर के ग्रंथ वृहत्संहिता में उल्लेख किया गया है कि ताम्बुल (पान) के सेवन से मुंह में चमक बढ़ती है तथा सुगंध प्राप्त होती है, आवाज में मधुरता आती है। अनुराग में भी वृद्धि होती है। चेहरे की सुंदरता भी बढ़ती है तथा कफ जनित विकार दूर होते हैं।

स्कंदपुराण के कई अध्यायों के अंतर्गत ताम्बूल का विभिन्न तरीके से वर्णन किया गया है। ताम्बूल का बीड़ा लगाना तथा ताम्बूल खाना अपने आप में एक बहुत बड़ी कला है। भारत में प्राचीन काल में धनी लोगों के यहां ताम्बूल वाहिकाएं इस कला की विशेष मर्मज्ञ हुआ करती थी। ताम्बूल का बीड़ा लगाने की विधि का वर्णन करते हुए वराहमिहिर ने कहा है कि- सुपारी, कत्था तथा चूना का उपयोग मुख्य रूप से ताम्बूल में होता है। इसके अलावा विभिन्न प्रकार के सुगंधित पदार्थ और मसाले आदि भी छोड़े जाते हैं।

ताम्बूल के साथ उपयोग किये जाने वाले कत्था, चूना तथा सुपारी की मात्रा संतुलित होनी चाहिए। यदि ताम्बूल में कत्था की मात्रा अधिक हो जाती है तो लाली कालिमा में बदल जाती है, होंठों का रंग भद्दा हो जाता है। यदि सुपारी की मात्रा अधिक हो जाती है तो पान की लाली फीकी पड़ जाती है तथा होठों की सुंदरता बिगड़ जाती है। पान में चूने की अधिक मात्रा होने से जीभ कट जाती है तथा मुंह का सुगंध बिगड़ जाता है। यदि पान के पत्तियों की मात्रा

अधिक हो तो पान की सुगंध खराब हो जाती है। इसलिए रात के पान में पत्ते की संख्या अधिक होनी चाहिए तथा दिन में सुपारी की मात्रा अधिक होनी चाहिए। पान का सेवन करने के बाद लोग अपने कार्यों में लग जाते थे।

आचार्य़ वात्स्यायन ने स्नान करने के बारे में कोई भी वर्णन नहीं किया है। इसका कारण यह है कि उस समय स्नान करने की कोई भी प्रचलित विधि नहीं थी तथा उसका कोई भी विशेष महत्व नहीं था।

हमारे देश में प्राचीन काल में लोग किस प्रकार स्नान करते थे। इसकी जानकारी प्राचीन, काव्यों, नाटकों, कथा-ग्रंथों में बहुत अधिक मात्रा में मिलती है। कादम्बरी में स्नान करने की विधि का वर्णन इस प्रकार से किया गया है।

लोग दोपहर से थोड़े समय पहले कार्यों को निपटाकर स्नान करने के लिए तैयार हो जाते थे। स्नान करने से पहले लोग कुछ हल्के व्यायाम करते थे। व्यायाम करने के बाद सोने-चांदी के बर्तनों से स्नान करते थे। स्नान के समय लोग अपनी सेविकाओं से शरीर की मालिश किसी सुगंधित तेल से कराते थे तथा बालों में आंवले का तेल लगाते थे।

स्नान के दौरान लोग अपनी गर्दन की मालिश दिमागी तंतुओं को स्वस्थ बनाने के लिए करते थे। स्नान करने के बाद लोग शरीर को साफ कपड़े से पोछकर कपडे पहनता था। इसके बाद वह पूजाघर में जा करके शाम की पूजा का उपासना करता था।

कामसूत्र में वर्णित स्नान की विधि व्यवहारिक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अधिक उपयोगी होती है। वैसे तो स्नान प्रतिदिन करना चाहिए लेकिन शरीर का उत्सादन एक-एक दिन का अंतर करके करना चाहिए। शरीर की स्वच्छता तथा कोमलता के लिए साबुन का उपयोग अवश्य ही करना चाहिए। लेकिन साबुन का उपयोग प्रतिदिन न करके हर तीसरे दिन करना चाहिए।

उस समय के लोग अपने दांतों, नाखूनों और बालों की सफाई बहुत अच्छी तरह से करते थे। नाखूनों के काटने की कला की चर्चा वैदिक कालीन साहित्य में भी मिलती है। संस्कृत साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि लोग नाखूनों को त्रिकोणाकार, चंद्राकार, दांतों के समान तथा अन्य विभिन्न आकृतियों में काटते थे। कुछ लोगों को लंबे नाखून पसंद थे। कुछ लोगों को छोटे आकार के तो कुछ लोगों को मध्यम आकार के नाखून रखने के शौक था।

आचार्य वात्स्य़ायन के अनुसार हर चौथे दिन पर सेविंग करना चाहिए। भारत में हजामत (सेविंग करना) कराने तथा नाखून काटने की प्रथा बहुत ही पुरानी है। वैदिक काल में भी लोग हजामत (सेविंग करना) तथा नाखून पर विशेष ध्यान देते हैं।

वैदिक साहित्य के अंतर्गत क्षुर और नखकृन्तक शब्द का प्रयोग से ही प्रमाणित होता है। ऋग्वेद तथा उसके बाद के साहित्य में नाखून को श्मश्रु कहा जाता है तथा सिर के बालों को केश कहते हैं। यजुर्वेद, अथर्वेद औऱ ब्राह्मण ग्रंथों में सिर के बालों का वर्णन मिलता है। वेदों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वैदिक काल में आर्यों में बालों के बारे में विभिन्न प्रयोग मिलते हैं। अथर्ववेद के अंतर्गत विभिन्न मंत्र ऐसे होते हैं जिनमें बालों के बढ़ने के बारे

में औषधियों का वर्णन किया गया है लेकिन ऐसे प्रयोग सिर्फ औरतों के लिए ही हैं।

अधिकांश ऋषि-मुनि सिर पर लंबे बाल रखते थे तथा बालों को विभिन्न तरीके से गूंथकर रखते थे। कुछ ऋषि-मुनि बालों का जूड़ा बनाकर रखते थे तो कुछ बालों को समेटकर रखते थे। इसके अलावा कुछ ऋषि-मुनि बालों को कपाल की ओर झुकाकर बांधते हैं।

इस प्रकार के बालों को वेदों में कपर्द के नाम से जाना जाता है। ऋग्वेद में एक स्थान पर युवती को "चतुष्कपर्दा" तथा एक स्थान पर सिनी वाली देवी को सुकपर्दा कहा गया है। इसी प्रकार स्त्रियां भी बालों को विशेष प्रकार से बालों को संवारती हैं।

ऋग्वेद में वशिष्ठ ऋषियों को दक्षिणतः कपर्दा अर्थात दाहिनी तरफ जटा वाले कहा जाता है। कुछ देवता और ऋषि-मुनि लंबे बाल रखते हैं लेकिन बालों में गांठ नहीं बांधने देते थे, उन्हें पुलस्ति के नाम से जाना जाता है। जो देवता और ऋषि-मुनि बाल, दाढ़ी और मूंछ बढ़ाये रहते हैं उन्हें ऋग्वेद में मोटी दाढ़ी और मूंछ वाला कहा गया है।

श्लोक-7. पूर्वाह्वयोभोजनम। सायं चारायणस्य।।7।।

अर्थ- स्नान करने के बाद भोजन तथा दिन में सोने का विधान-

भोजन दोपहर के पहले और दोपहर के बाद दो बार करना चाहिए। लेकिन आचार्य चारायण के अनुसार दूसरा भोजन शाम के समय का ही उपयोगी होता है।

श्लोक-8. भोजनानन्तरं शुकसारिकाप्रलापनव्यापारजः। लावककुक्कुटमेषयुद्धानि तास्ताश्च कला कीड़ाः। पीठमर्दविदूषकायत्ता व्यापाराः दिवाशय्या च।।8।।

अर्थ- भोजन करने के बाद लोग तोता-मैना को बोलते और पढ़ाते थे, उनसे बाते करते थे, लावक तथा मुर्गों की लड़ाई देखना तथा विभिन्न प्रकार की कलाओं और कीड़ाओं द्वारा मनोरंजन करना तथा उनके प्रिय कार्यों को मददगार पीठमर्द, विट तथा विदूषक के सुपुर्द किये गये कार्यों की ओर ध्यान देना चाहिए। इन सभी कार्यों के उपरांत सोये।

प्राचीन काल में भारत के नागरिक क्या खाते थे। इसके बारे में प्रबंधकोष, हर्ष चरित्र, कादम्बरी आदि ग्रंथों के वर्णनों से हो जाती है।

कादम्बरी का अध्ययन करने से यह जानकारी प्राप्त होती है कि उस समय के भोजन में सभी तरह के खाने एवं पीने योग्य पदार्थ शामिल होते हैं। इनमें गेहूं, चावल, जौ, चना, दाल, घी और मांस आदि सभी चीजें रसोई में प्रयोग की जाती थी। भोजन, नमकीन पदार्थों से शुरू किया जाता है तथा मिठाइयों से समाप्त होता था।

भोजन के बाद लोग सुक-सारिकाओं से बातें करते थे। प्राचीन काल में भारत में सुक-सारिकाओं का सम्मान राजमहल से लेकर ऋषि-मुनियों के आश्रम तक था।

श्लोक (9)- गृहीतप्रसाधनस्यापराह्णे गोष्ठीविहाराः।।

अर्थ- इसके दिवाशयन के बाद तीसरे पहर (शाम के समय) की दिनचर्या बताई जाती है- तीसरे पहर (शाम के समय) वस्त्रालंकार से विमंडित नागरक गोष्ठी-विहारों में मौजूद हो।

श्लोक (10)- प्रदोषे च संगीतकानि। तदन्ते च प्रसाधिते वासगृहे संजारितसुरभिधूपे ससहायस्य शय्यायामभिसारिकाणां प्रतीक्षणम्।

अर्थ- तथा शाम के समय संगीत की महफिल में शामिल होने के बाद सजे हुए वासगृह में अपने सहायकों के साथ बैठकर अभिसारिका के आने का इंतजार करें।

श्लोक (11)- दूतीनां प्रेषणम्, स्वयं वा गमनम्।।

अर्थ- देर हो जाने पर दूती को बुलाने के लिए भेजे या स्वयं ही उसे बुलाने जाएं।

श्लोक (12)- आगतानां च मनोद्दरैरालापैरुपचारैश्च ससहायस्योपक्रमाः।।

अर्थ- आई हुई नायिकाओं को दोस्तों के साथ अच्छी बातचीत और रसमय बर्ताव करके सम्मानित करें।

श्लोक (13)- वर्षप्रमृष्टनेपथ्यानां दुर्दिनाभिसारिकाणां स्वयमेव पुनर्मण्डनम्, मित्रजनेन वा परिचरणमित्याहोरात्रिकम्।।

अर्थ- अगर बारिश के कारण नायिका के कपड़े भीग जाते हैं तो स्वयं ही उसके कपड़े बदलकर उसका साज-श्रृंगार करें और मित्रों से सहायता लें। इस तरह से नागरक की दिनचर्यो तथा रात्रिचर्या समाप्त होती है।

आचार्य वात्स्यायन नागरक की दिनचर्या के बारे में बताते हुए उसे सजधज कर गोष्ठी

विहार में जाने की सलाह दे देते हैं। प्रसाधन से तात्पर्य साज-श्रंगार से है जो कपड़ो और अलंकारों के द्वारा पूरा माना जाता है। प्राचीन भारत के नागरिक के वस्त्रालंकार किस प्रकार के थे। इसका अंदाजा पुरानी मुर्तियों के द्वारा किया जा सकता है।

भरतमुनि ने भी नाट्यशास्त्र इसके बारे में कुछ संकेत किए हैं। उनके मुताबिक, अभिजात्य नागरिक क्षौभ, कार्पास, कौषेय तथा शंगव 4 तरह के कपड़े पहनते हैं। अलसी के रेशों को निकालकर उनसे जो कपड़े बनाए जाते थे, उनको क्षौम कहा जाता था।

क्षौम के कपड़ों को छाल से भी बनाया जाता था। कपास (रुई) से बने कपड़े कोशेय तथा ऊन के बने हुए कपड़े रागंव कहलाते थे। यह चारों प्रकार से कपड़े, निबन्धनीय, प्रक्षेप्य तथा आरोप्य। इन प्रकारों से पहने जाते थे। साड़ी, पगड़ी आदि निबंधीनीय कहलाते थे। चोलक तथा चोली प्रक्षेप्य और उत्तरीय, चादर, दुपट्टा आदि आरोग्य थे।

इस तरह के कपड़े पहनने के बाद नागरिक अलंकार धारण करता था। वराहमिहिर ने 13 तरह के रत्नों तथा 9 तरह के सोने से बने गहनों का उल्लेख वृहत्संहिता के अंतर्गत किया है। वज्रमुक्ता, पद्मराग, मरकत, इन्द्रनीली, वैदूर्य, पुष्पराग, कंकेतन, पुलक, रुधिरक्ष, भीष्म, स्फटिक तता प्रवाल इन 13 प्रकार के जवाहरातों से नागरिक के कई अलंकार बनते हैं।

जाम्बूनद, शातकौम्भ, हाटक, वेटक, श्रृंगी, शुक्तिज, जातरूप, रसविद्ध तथा आकरउद्धत- इन 9 तरह के सोने की जातियों और रत्नों को मिलाकर निम्नलिखित अलंकार बने होते थे।

आवेध्य, निबन्धनीय, प्रक्षेप्य, आरोप्य। अंग को छेदकर पहने जाने वाले गहने आवेध्य कहलाते हैं। अंगद वेणी, शिखादददिका, श्रोणी सूत्र, चूड़ामणि आदि बांधकर पहने जाने वाले गहने निबंधलीय के नाम से भी जाने जाते हैं।

अर्निका कटक, वलय, मंजीर आदि अंग में डालकर पहने जाने वाले अलंकार प्रक्षेप्य कहा जाता है। हार नक्षत्रमालिका आदि आरोपित किए जाने वाले गहने आरोग्य कहलाते हैं।

रत्न अलंकारों तथा कपड़ो को पहनने के बाद माल्य-अलंकार धारण करता था। वह माल्य 8 प्रकार के होते थे। उद्धर्वित, विवत, संघाट्य ग्रंथिमत, अवलंबित. मुक्तक, मंजरी तथा स्तवक। मालाओं को पहनने के बाद वह मंडन द्रव्यों से मंडित होता था।

कस्तूरी, कुंकुम, चंदन, कर्पूर, अगुरू, कुलक, दंतसम पटवास सहकार, बैल, तांबुल, अलकत, अंजन, गोरोचन आदि उस समय के मंडन द्रव्य थे। इन द्रव्यों की सहायता से नागरक भ्रूघटना, केश रचना आदि योजनामय अलंकार तथा देश-काल की परिस्थिति के अनुरूप श्रमजल, मद्य-मद आदि जन्य और दूर्वा, अशोक, पल्लव यवांकुर, रजत, टापू शंख, तालदल, दंतपात्रिका मृणाल वलय आदि निवेश्य से मंडित होकर विहार गोष्ठियों में जाता था।

आचार्य वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में जिन 64 कलाओं के बारे में बताया है उनमें से 2 तिहाई कलाएं बौद्धिक अथवा साहित्यिक है। दित्याशय्या के बाद कपडे अलंकार से विमंडित नागरिक जिन गोष्ठियों में भाग लेता था। वह गोष्ठिया ज्यादातर बौद्धिक तथा साहित्यिक ही हुआ करती थी। उच्चकोटि के श्रीमंत नागरिक की गोष्ठी के साथ प्रधान अंग होते थे।

विद्वान, भाट, मसखरे, कवि, गायक, पुराणज्ञ और इतिहासज्ञ- ये सातों अंग बौद्धिक तथा

काव्यशास्त्र विनोदों में भाग लिया करते थे। आचार्य वात्स्यायन के अनुसार अच्छी या बुरी 2 प्रकार की गोष्ठी जमती थी। 1-2 मनचले लोगों की गोष्ठी- जिसमें जुआ, हिंसा आदि कुकर्म शामिल थे। दूसरे भले मनुष्यों की गोष्ठी जिसमें खेल और विद्याएं शामिल थी।

पुराने समय में पदगोष्ठी, जलगोष्ठी, गीतगोष्ठी, नृत्यगोष्ठी, काव्यगोष्ठी, वीणागोष्ठी, वाद्यगोष्ठी आदि कई प्रकार की गोष्ठियों में नागरिक भाग लेते थे। इन गोष्ठियों के विषय, कहानियां, कलाएं, काव्य, गीत, नृत्य, चित्र और वाद्य आदि होते थे। विद्यागोष्ठी की अंगभूत गोष्ठियां काव्यगोष्ठी, पदगोष्ठी और जलगोष्ठी थी। विद्यागोष्ठी का खास समादरण था।

काव्यगोष्ठियों में काव्य-प्रबंधो का आयोजन होता था। जलगोष्ठी में आख्यान, आख्यायिका, इतिहास और पुराण आदि सुनाए जाते थे। पदगोष्ठी में अक्षरच्युतक, मात्राच्युतक, बिन्दुमती, गूढ़ चतुर्थपाद आदि प्रकार की बुद्धि बढ़ाने वाली पहेलियां रहती थी।

हर्षचरित के अंतर्गत बाण ने वीरगोष्ठियों के बारे में भी बताया है जिसमें रणभूमि में साका करने वाले वीरों की कहानियां कही और सुनी जाती थी। इस तरह की गोष्ठियों में भारत के पुराने नागरिक के बुद्धिचातुर्य की परीक्षा होती थी। इसके साथ ही मनोरंजन भी होता था। गोष्ठी विनोद के बाद शाम के समय संगीत का आयोजन हुआ करता था।

नागरिक संगीत गोष्ठी को खत्म करके वासगृह में पहुंचकर अभिसारिका की प्रतीक्षा करता है। प्रसाधित वासगृहे का मतलब टीकाकारों नें धूप से खुशबूदार किया हुआ कमरा बताया है लेकिन यह गलत है। पुराने समय में राजा, अमीरों तथा संपन्न नागरिकों के यहां वासागृह बने हुए होते थे। जहां पर विवाह के बाद दूल्हा-दूल्हन का चतुर्थी कम संपादित हुआ करता था।

वासागृह के अंतर्गत दुल्हा-दुल्हन तथा प्रेमी-प्रेमिका के बैठकर प्यार भरी बातें, आलिंगन, चुंबन आदि रति-क्रियाएं करने के लिए एक ही पलंग हुआ करता था।

दरवाजों के पल्लों पर कामदेव की दोनों स्त्रियों प्रीति और रति की आकृतियां बनी हुआ करती थी। दोनों ही पल्लों पर मंगल-दीप जला करते थे। एक तरफ फूलों से बोझिल रक्त-अशोक के नीचे धनुष पर बाण रखे हुए निशाना साधे हुए कामदेव का चित्र बना हुआ रहता था। सफेद रंग की चादर से ढके हुए पलंग की बाजू में कांचन आचामरुक रखी होती थी और दूसरी तरफ हाथीदांत का डिब्बा लिए हुए सोने की पुत्तलिका खड़ी रहती थी। सिरहाने पर पानी से भरा हुआ चांदी का निद्राकलश रखा हुआ रहता था।

वासागृह की भित्तियों पर गोल-गोल शीशे लगे हुए होते थे, जिनमें प्रियतमा के बहुत सारे प्रतिबिंब पड़े रहते थे। 11वीं शताब्दी में ऐसे वासगृहों को आदर्श भवन कहा जाने लगा था तथा बाद में ये शीशमहल या अरसी महल कहलाने लगे थे।

श्लोक (14)- घटानिबंधनम्, गोष्ठीसमवायः, समापानकम्, उद्यान गमनम, समस्या क्रीडाश्च प्रवर्तयेत्।।

अर्थ- इसमें 5 तरह के सामूहिक विनोदों के बारे में बताया गया है। घटानिबंधन गोष्ठी समवाय, समापानक, उद्यानगमन तथा समवयस्क मित्रो के साथ खेल खेलना- इन 5 प्रकार की क्रीड़ाओं में नागरिक को यथावसर प्रवृत्त होना चाहिए।

घटानिबंध- घटानिबंधन देवायतन में जाकर सामूहिक नृत्य-गान करने अथवा गोष्ठी का बोधक हैं। पुराने भारत का नागरिक हर मौसम में बहुत से उत्सवों का आयोजन करता था। शरद, बसंत, हेमंत तथा बारिश के मौसम के अनेक उत्सवों का विवरण पुराने ग्रंथों में बहुत ज्यादा मात्रा में मिलता है।

दूसरे मनोरंजन को गोष्ठीसमवाय बताया गया है। इस तरह की गोष्ठियों को नागरिक अपने घर पर ही आयोजित किया करते थे या किसी गणिका के घर पर। विद्या तथा कला में माहिर कन्याएं गोष्ठी समवाय में जरूर हिस्सा लेती थी तथा पुरुषों की तरह कई प्रकार की काव्य समस्याओं, मानसी, काव्यक्रिया, पुस्तक वाचक, दुर्वाचस योग, देशभाषाविज्ञान, छंद, नाटक आदि बौद्धिक तथा उपयोगी कलाओं में भाग लेती थी और साथ ही गीत, नृत्य और रसालाप द्वारा मौजूद सभ्यों का मनोविनोद भी किया करती थी।

तृतीय मनोरंजन समापानक है। अच्छी तरह से जी भरकर शराव का सेवन करना समापानक है। इस तरह के समापानक मनोरंजन साल में एकाध बार किए जाते थे क्योंकि कौटिल्य अर्थशास्त्र के द्वारा पता चलता है कि उस जमाने में भई शराब बनाने, पीने और बेचने पर बहुत ज्यादा नियंत्रण था। आज की तरह उस समय का भी सरकार का आबकारी विभाग शराब के ठेकों तथा शराब के बनाने आदि की व्यवस्था करता था।

इस तरह के प्रबंध करने वाले व्यक्ति को सुराध्यक्ष कहते थे जो शराब के बनवाने और बेचने का प्रबंध काबिल व्यक्तियों द्वारा किया करता था। सुविधा के अनुसार शराब के ठेके भी वही देता था।

अगर कोई व्यक्ति गैर-कानूनी तरीके से शराब बेचते हुए पकड़ा जाता था तो उसे सजा मिलती थी। शराब के मंगवाने या भेजने पर नियंत्रण रहता था। खुलेआम शराब की बिक्री पर प्रतिबंध लगा हुआ था। जो व्यक्ति शराब पीकर दंगा-फसाद करता था उसे पकड़ लिया जाता था। शराब को उधार नहीं बेचा जाता था। मद्यशालाओं को बनवाने के लिए सरकारी नक्शे तैयार किये जाते थे और फिर उन्ही के आधार पर उनका निर्माण कार्य होता था। इसके अलावा सरकारी गुप्तचर विभाग का काम यह था कि वह रोजाना बिकने वाली शराब को नोट कर लें।

समापानक जैसे उत्सवों के मौके पर मद्यनिर्माण और मद्यपान का अलग से सरकारी कानून था। इन मौकों पर सिर्फ श्वेतसुरा, आसव, मेदक और प्रस्सना नाम की शराब ही पी जाती थी।

सुराध्यक्ष की इजाजत से नागकरण इन शराबों को अपने घर पर ही तैयार कर लिया करते थे। मदन महोत्सव आदि खास तरह के मौकों पर सिर्फ 4 दिनों तक खुलकर सामूहिक रूप से सरकार की तरफ से शराब पीने की छूट दी जाती थी। ऐसे मौकौं पर सुराध्यक्ष से व्यक्तिगत रूप से सामूहिक रूप से इजाजत लेने की जरूरत नहीं पड़ती थी।

कामसूत्र में बताया गया है कि उन दिनों राजभवनों में अक्सर आपानकोत्सव या पान गोष्ठी के आयोजन हुआ करते थे। इन मौकों पर बाहर के प्रेमी लोग बिना किसी रोक-टोक के राजभवन में प्रवेश किया करते थे।

चौथा मनोविनोद उद्यानगमन है। आचार्य वात्स्यायन नें स्वंय बताया है कि उस समय उद्यानगमन मनोविनोद किस तरीके से संपादित होता था। उद्यान यात्रा के लिए पहले से एकदिन तय कर लिया जाता था। उस दिन नागरिकगण सुबह से ही पूरी तरह सजधज कर तैयार हो जाया करते थे।

यह यात्रा किसी उद्यान या वन की ही की जाती है जो नागरिकों के निवास-स्थान से इतनी दूरी पर हो कि शाम तक घर पर वापिस पहुंच सके। इन उद्यान यात्राओं में कभी-कभी अन्तःपुरिकाएं भी साथ में रहती थी और कभी-कभी गणिकाओं को भी ले जाया जाता था।

उद्यान यात्रा एक तरह का गोठ अथवा पिकनिक होती थी। ऐसे अवसरों पर हिन्दोल लीला, समस्यापूर्ति, आख्यायितका, बिंदुमती आदि अनेक तरह की पहेलियां खेला करती थी। कुक्कुट, लाव, मेष, बटेर आदि पशु-पक्षियों की लड़ाईयां कराई जाती थी। इसी मौके पर कहीं-कहीं क्रीडैकशाल्मली खेल खेला जाता था। सेमल के पेड़ के नीचे ही इस खेल को खेला जाता था। यशोधर के अंतर्गत विदर्भ प्रदेश के नागरिक इस खेल में ज्यादा शौक रखते थे।

पांचवां मनोविनोद समस्या क्रीड़ाओं का है जो सामूहिक रूप से खेली जाती थी। यह काव्य-कला संबंधी क्रीड़ाएं अक्सर उत्सवों में स्थान पाती थी लेकिन कभी-कभी खासतौर पर इसी विषय के दंगल होते थे। इस विनोद में खासतौर पर निम्नलिखित काव्य-क्रीड़ां होती थी।

मानसीकला-

इस विनोद के अंतर्गत श्लोक के अक्षरों की जगह पर कमल या किसी दूसरे फूल की पंखुड़ियों को बिछा देते थे और उन पंखुड़ियों से ही श्लोक पढ़ा जाता था। इसका दूसरा रूप यह भी था कि अमुक स्थान पर यह मात्रा है, कहीं पर अनुस्वार है, कहीं पर विसर्ग है। बस इतने सी ही उसे पूरा श्लोक बनाना पड़ता था।

प्रतिमाला-

इसको अंतयाक्षरी भी कहते हैं। एक पक्ष श्लोक पढ़ता था और दूसरा पक्ष श्लोक के अंत्याक्षर से शुरू करके दूसरा श्लोक पढ़ता था।

अक्षरमुष्ठि-

यह समस्या 2 तरह की होती थी-सभासा और निरवभाषा। किसी नाम को संक्षिप्त करके बोलना सभासा कहलाता है जैसे फाल्गुन, चैत्र, वैशाख को छोटा करके फा-चै-वै बोलना। गुप्त तरीके से बातचीत करना निरवभासा के लिए अनेक प्रकार के इशारे काम में लाए जाते हैं।

इसमें एक विधि अक्षरमुष्दि है। इसमें कवर्ग अक्षरों के लिए मुट्ठी बांधी जाती रही है। चवर्ग के लिए हथेली फैला दी जाती थी।

इसका विधान यह है कि जो कुछ भी बोलना होता है पहले उसके अक्षरों के वर्गों के संकेत किए जाते हैं। वर्ग बताने के बाद उंगलियों को उठाकर वर्ग अक्षर बताएं जाते हैं जैसे अगर कहना है ग तो पहले वर्ग बताने के लिए मुट्टी बांधी गई और इसके बाद तीसरी उंगली उठाकर अक्षर बतला दिया गया। वर्ग तथा अक्षर बताने के बाद पैर उठाकर अथवा चुटकी बजाकर मात्राएं बताई जा सकती है।

उस समय का हर नागरिक इस प्रकार के काव्य विनोदों को अभ्यास प्रयत्नपूर्वक करता था क्योंकि यश, कीर्ति और लाभ के स्रोत भी ऐसे खेल माने जाते थे। इनके अलावा अक्षरक्रीड़ा, द्यूत समाद्वय, जलक्रीड़ा उदक्ष्वेडिका, कुसुमावचय आदि क्रीड़ांए होती थी।

श्लोक (15) पक्ष्सय मासस्य वा प्रज्ञातेऽहनि सरस्वत्या भवने नियुक्तानां नित्यं समाजः।।

अर्थ- पहली सूचना के मुताबिक 15वें दिन या एक महीनें में निश्चित दिन में सरस्वती के मकान में नागरकगण इकट्ठा हो।

श्लोक (16) कुशीलवाश्चागंतवः प्रेक्षणकमेषां दद्युः। द्वितीयेऽहनि तेभ्यः पूजा नियतं लभेरन्। ततो यथाश्रद्धमेषां दर्शनमुत्सगर्गो वा। व्यसनोत्सवेषु चैषां परस्परस्यैककार्यता।।

अर्थ- स्थायी नियुक्त नट, नर्तक आदि कलाकार समाज उत्सव में भाग लें। बाहर से आए हुए नट, नर्तक भी दर्शकों को अपनी कला-कुशलता का परिचय दें तथा दूसरे दिन वे सही पुरस्कार हासिल करें। इसके बाद अगर नागरिकों में उनके प्रति सम्मान का भाव हो तो उन्हे कला-प्रदर्शन के लिए रोका जा सकता है। आगंतुक कलाकारों तथा स्थानीय कलाकारों में आपसी सहयोग तथा एकता की भावना होनी चाहिए।

दुर्वाचनयोग-

इसमें ऐसे मुश्किल शब्दों के श्लोक हुआ करते थे जिन्हे आसानी से पढ़ा नहीं जा सकता था।

श्लोक (17)- आगन्तूनां च कृतसमवायानां पूजनमभ्युपत्तिश्च। इति गणधर्मः।।

अर्थ- समाज उत्सव देखने के लिए सरस्वती भवन में आयोजित अगर ऐसे लोग आएं जो गोष्ठी के सदस्य न हो तथा बाहर से आए हुए हो तो उनकी अभ्यर्चना तथा मेहमानों का

सत्कार यथाविधि करना चाहिए। किसी तरह की मुसीबत आने पर उनकी मदद भी करनी चाहिए। इसी गणधर्म होता है।

आचार्य वात्स्यायन के समयमें 5 तारीख की रात को सरस्वती जी के मंदिर में समाजोत्सव मनाया जाता था। उस समय के उत्सवों में इस पहले दर्जे का उत्सव माना जाता था।

इन उत्सवों के समय बहुत ज्यादा भीड़-भाड़ हुआ करती थी। इन उत्सवों में वहां के नट-नाटियों के अलावा बाहर से भी नट-नाटियां, नर्तक, कुशीलव आदि अपनी-अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिए आया करते थे। हर कलाकार अपनी कला द्वारा दर्शकों को खुश तथा मंत्रमुग्ध करने की कोशिश करता था। बाहर से आए हुए कलाकारों के रुकने के लिए भोजन आदि के प्रबंध का कार्य एक-एक व्यावसायिक श्रेणी पर छोड़ दिया जाता था। 5 तारीख (पंचमी) के अलावा अन्यान्य देवालयों में इस तरह का समावजोत्सव मनाया जाता था।

समाज आर्य जाति का बहुत ही पुराना और संभवतः आदि उत्सव है। वैदिक काल में समाज का नाम समन था जिसे एक तरह का मेला कहा जाता था। इन समनों के अंतर्गत पुरुषों के अलावा स्त्रियां भी आती थी जो दिल बहलाने के लिए काफी संख्या में उपस्थित होती थी। कवि, धनुर्धर और रेस के घोड़े भी इनाम पाने की हसरत रखकर वहां पर पहुंचते थे। इनके अलावा गणिकाएं भी नाम और धन पाने की हसरत रखकर अपनी कला दिखाने के लिए वहां पर पहुंचा करती थी।

इस मेले की एक खासियत यह थी कि इसमें अपना मनचाहा वर पाने के लिए वयस्क कुमारी कन्याएं काफी संख्या में भाग लेती थी। यह मेला पूरी रात चलता था।

कामसूत्र तथा उससे पहले परिवर्ती साहित्य के अध्ययन से यह पता चलता है कि समाज उत्सव पहले निर्दोष आमोद-प्रमोद का एक सामुदायिक आयोजन था। बाद में इसका एक दूसरा रूप भी बन गया जिसके अंतर्गत शराब पीना, मांस खाना, केलि-क्रीड़ाएं भी होने लगी।

इस प्रसंग में गणभोज की भी व्यवस्था की गई थी जिसमें कई प्रकार के व्यंजन, अनाज और सब्जियां आदि बनी हुई थी। इनके साथ मांस का भी पूरा प्रबंध होता था। भगवान ने उन मल्लों को महंगे कपड़े तथा मुद्राएं देकर सम्मानित किया था।

कदाचित हिंसामूलक खाने वाले पदार्थों तथा चरित्रहीनता बढ़ने के कारण प्रियदर्शी अशोक ने अपने शिलालेखों में ऐसे शिलालेखों में ऐसे समाजोत्सव की निंदा की है।

श्लोक (18)- एतेन तं तं देवताविशेषमुद्दिश्य संभावितस्थितयो घटा व्याख्याताः।

अर्थ- इस प्रकार, शिव, सरस्वती, यज्ञ, कामदेव आदिदेवताओं के आलयों में यथासंभव जुटने वाली सामुदायिक गोष्ठियों-मेलों का विवरण पेश किया है।

श्लोक (19)- गोष्ठीसमवायमाह वेश्याभवने सभायामन्यतमस्योद्वसिते वा समानविद्याबुद्धिशीलवित्तवयसां सह वेश्याभिरनुरुपैरालापैरासनबंधो गोष्ठी।

अर्थ- इसके अंतर्गत गोष्ठी समवाय की व्याख्या की गई है-
बुद्धि, संपत्ति, विद्या, उम्र और शील में अपने समान मित्रों, सहचरों के साथ वेश्या के घर में, महफिल में अथवा किसी नागरिक के निवास स्थान पर गोष्ठी समवाय का आयोजन करना चाहिए।

श्लोक (20)- तत्र चैषां काव्यसमस्या कलासमस्या वा।

अर्थ- वहां सुयोग्य वेश्याओं के साथ बैठकर मधुर तथा मनोरंजक बातचीत करें। काव्य व अन्य बौद्धिक, साहित्यिक गोष्ठियों में भाग लेकर काव्य चर्चा, कला चर्च तथा साहित्य चर्चा करें। साहित्य, संगीत और कला जैसे विषयों पर आलोचनात्मक, तुलनात्मक चिंतन किया जाना चाहिए।

श्लोक (21)- तस्यामुज्ज्वला लोककान्ताः पूज्याः। प्रीतिसमानाश्चाहारितः।

अर्थ- और इस प्रकार की गोष्ठी समवाय में सम्मिलित प्रतिभाशाली कलाकार का अच्छा सम्मान करना चाहिए और बुलाए गए मेहमानों तथा कलाकारों का खासतौर पर सम्मान करना चाहिए।

श्लोक (22)- परस्परभवनेषु चापानकानि।।

अर्थ- एक-दूसरे के घर पर जाकर सुरापान, मैरेथ और मधु का पान करना चाहिए।

श्लोक (23)- तत्र मधुमैपेसुरावान्तिविधलवणफलहरितशाकतिक्तकटुकामलोपदंशान्वेश्याः पाययेयुरनुपिबेयुश्च।।

अर्थ- इसके अंतर्गत मधु, मैरीय, सुरा और आसव आदि शराबों को अनेक प्रकार के लवण, फल, हरी सब्जियां, चरपरे, कड़वे तथा खट्टे मसालों के साथ नागरिकों को वेश्याओं को स्वंय ही पिलाना चाहिए तथा इसके बाद खुद पीना चाहिए।

श्लोक (24)- एतेनोद्यानगमनं व्याख्यातम्।।

अर्थ- इस तरह से उद्यान यात्रा में भी समापानक होना चाहिए। अंगूर अथवा दाख के रस से जो शराब बनाई जाती है उसे मधु कहा जाता है। इसके कापिशायन तथा हारहूरक ये 2 नाम और है। भारत का रसिक रईस मधु शराब को साफ करवाकर पीता था।

मरोड़ की फली, पलाश, छोह, भारक, मेढ़ासिंगी, करंजा, क्षीरवर्ग के कदि की भावना दिया गया खादार शक्कर का चूरा और उसका आधा लोध, चीता, वायविडंग, परम, मोथा, कलिंग, जौ, दारुहल्दी, कमल, सौंफ, चिचिड़ा, सतपर्ण आक का फूल को एकसाथ पीसकर चूर्ण बनाकर इकट्ठा करके एक मुट्ठी मसाला एक सारी परिमाण शराब में डालकर शराब को इस प्रकार साफ बनाया जाता था कि पीने वाले खुश हो जाते थे। कभी-कभी स्वाद को बढ़ाने के लिए इसमें 5 पल राब भी मिला दी जाती थी।

मैरेय शराब को तैयार करने के लिए मेढ़ासिंगी की छाल का काढ़ा बनाया जाता था और फिर उसमें गुड़, पीपल और कालीमिर्च को मिलाया जाता था। कभी-कभी पीपल की जगह त्रिफला का प्रयोग कर लिया जाता था।

उस समय में सुरा (शराब) 4 प्रकार की होती थी-

- 1. सुरा,
- 2. रसोत्तरा,
- 3. सहकार,
- 4. बीचोत्तरा तथा सम्भारकी
- साधारण सुरा (शराब) में अगर आम का रस निचोड़ दिया जाता था तो वह सहकार सुरा बनती थी।
- अगर साधारण सुरा में गुड़ की चाशनी निचोड़ दी जाती है तो वह रसोत्तर शराब बनती है।
- साधारण सुरा में बीजबंध बूटियां छोड़ देने पर महासुरा बनती है।
- मुलहठी, दूध, केशर, दारुहल्दी, पाठा, लोध, इलायची, इत्र फुलेल, गजपीपल, पीपल और मिर्च आदि को साधारण सुरा में मिला देने से सम्भारिकी सुरा बनती थी।

आसव को बनाने में 100 पल कैथे का सार, 500 पल राब और एक प्रस्थ शहद का प्रयोग किया जाता था। इसमें पड़ने वाला मसाला, दालचीनी, चीता, गजपीपल, वायविडंग 1-1 कर्ष और और 2-2 कर्ष सुपारी, मुलहठी, लोघ और मोथा लेकर आसव में मिलाया जाता था।

इन शराबों को पीने के साथ-साथ कई तरह के लवण, सब्जी के अलावा खट्टे-मीठे, चरपरे पदार्थ खाए जाते थे। आचार्य वात्स्यायन नें ऐसे पदार्थों को उपदंश लिखा है। उपदंश शब्द का अर्थ लिखते हुए हलायुध कोष ने कहा है कि मद्यपान रोचक भोज्य द्रव्यम अथवा शराब पीने के सहाये रोचक भोज्य पदार्थ।

आषानक गोष्ठियों में वेश्याओं की उपस्थिति अपेक्षित मानी जाती थी। वे रसिक नागरक को चषक भरकर शराब पिलाती तथा स्वयं भी पिया करती थी। उद्यान यात्राओं में भी गणिकाएं साथ जाया करती थी और वहां भी मद्यपान होता था।

श्लोक (25)- पूर्वाह्ण एव स्वलंकृतास्तुरगाधिरूढ़ा वेश्याभिः सह परिचारकानुगता गच्छेयुः। दैवसिकीं च यात्रां तत्रानुभूय कुक्कुटयुद्धद्यूतेः प्रेक्षाभिरनुकूलैश्च चेष्टितैः कालं गमयित्वा अपराह्णे गृहीततदुद्यानोपभोगाचिह्नास्तथैव प्रत्याव्रजेयुः।।

अर्थ- इसके अंतर्गत क्रीड़ा उत्सवों और क्रीड़ाओं के बारे में बताया जाता है-
सुबह-सुबह ही गहने-कपड़े पहनकर तथा घोड़े पर सवार होकर गणिकाओं और सेवकों को साथ लेकर उद्यान यात्रा पर जाना चाहिए। यह उद्यान यात्रा इतनी दूर की होनी चाहिए कि शाम तक वापिस पहुंच जाए। उद्यान में जाकर रोजाना के कामों से निपटकर लावक तथा मेढ़ों की बाजी लगाई गई लड़ाईयां देखें, नृत्य नाटक देखें, जुआ खेलें, संगीत का आनंद लें, मनोरंजक खेलों को खेलें। शाम से पहले उद्यान यात्रा के स्मृति-चिन्ह फल, फूल, पत्ते, स्तबक आदि लेकर जिस तरह आए थे उसी तरह घर पर वापिस लौटना चाहिए।

श्लोक (26)- एतेन रचितोदग्राहोदकानां ग्रीष्मे जलक्रीडागमनं व्याख्यातम्।।

अर्थ- इस तरह गर्मी की जल क्रीड़ाओं में लीन हो जाना चाहिए। गर्मी के मौसम का उत्तम मनोविनोद जल-क्रीडा़ होता है। जिस समय जमीन और आसमान तेज लू से धधकने लगते थे, उस समय पुराने भारत का श्रीमंत नागरक सर्पनिर्भीक के बराबर महीन वस्त्रों, सुगंधित कपूर का चूर्ण, चंदन का लेप तथा पाटल-फूलों से सुसज्जित धारागृह का प्रयोग दिल खोलकर करता था।

जब विलासनियां गृह वापिकाओं में जल-क्रीड़ा किया करती थी तो कान में घुसाए हुए शिरीष-कुसुम पानी में छा जाते थे। चंदन तथा कस्तूरिका के आमोद से और नाना रंग के अंगरागों से तथा श्रंगार-साधनों से पानी रंगीन हो जाता है।

जल-स्फलन से पैदा हुए जल बिंदुओं से आसमान में मोतियों की लड़ी बिछ जाती थी। तालाब के अंदर से गूंजते हुए मृदंग घोष को, बादल के स्वर जानकर, सोचे-विचारे मयूर उत्सुक हो उठते थे। बालों से खिसके हुए अशोक-पल्लवों से कमल-दल चित्रित हो उठते थे तथा आनंद कल्लोल से दिकमण्डल मुखरित हो उठता था। प्राचीन चित्रों के द्वारा यह जलकेलि, मनोरम भाव अंकित है।

श्लोक (27)- यक्षरात्रिः। कौमुदीजागरः। सुवसंतक।।

अर्थ- इसके अंतर्गत समस्या क्रीड़ाओं का परिचय दिया जाता है-
यक्षरात्रि कौमुदी जागर तथा सुनसंतक उत्सवों में समस्या क्रीड़ाएं रचाई जाती है-
आचार्य वात्स्यायन के समय में यज्ञ रात का उत्सव का आयोजन किया जाता था। दीपावली उत्सव का उल्लेख पुराणों, धर्मसूत्रों, कल्पसूत्रों में विस्तृत रूप से मिलता है। लेकिन हैरानी की बात यह है कि कामसूत्र के अंतर्गत दीपावली का कोई उल्लेख न होकर रात के यज्ञ का जिक्र किया गया है। रात्रि यज्ञ से इस बात का पता चलता है कि उस समय, उस दिन यज्ञ की पूजा होती रही होगी तथा द्यूत-क्रीड़ा रचाई जाती है।
अगर व्याकरण का आधार लेकर अर्थ निकाला जाए तो यज्ञ यते पूज्यते इतियज्ञ-छत्र-यज्ञः तथा यज्ञ रात्रि निष्पन्न होता है।
मुनकिन है इसी अर्थ को लेकर दीपावली का नाम उस समय यज्ञरात्रि रखा गया हो। पुराने समय में शायद दीपावली उत्सव शास्त्रीय अथवा धार्मिक रूप में नहीं मनाया जाता रहा है क्योंकि वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों के अंतर्गत इसका कोई विवरण नहीं है। स्कन्दपुराण तथा पद्मपुराण में इस पर्व का पूरा विवरण पाया जाता है। उसी के आधार पर दीपावली के उत्सव का प्रचलन अब तक है। कार्तिक की अमावस्या के साथ यज्ञ शब्द जोड़ने का तात्पर्य श्रीसूक्त से साफ हो जाता है। श्रीसूक्त ऋग्वेद के परिशिष्ट भाग का एक सूक्त है। इस सूत्र के एक मंत्र में मणिना सह कहा गया है।
इस वाक्य से पता चल जाता है कि लक्ष्मी का संबंध मणिभद्र यज्ञ से है। मणिभद्र यज्ञ से लक्ष्मी का घनिष्ठ संबंध होने से कामसूत्र के समय तक दीपावली की रात यज्ञरात्रि कहलाती है।
निसंदेह इतना तो कहा जा सकता है कि दीपावली का आधुनिक रूप में जो प्रचलन है वह ईसवीं तीसरी शती के बाद से शुरू होता है और आचार्य वात्स्यायन के समय इसी के पहले सुनिश्चित है। यह अनुमान किया जा सकता है कि वात्स्यायन के समय में कार्तिक की अमावस्या की रात में लक्ष्मी को पूजने और द्यूत-क्रीड़ा की प्रथा रही होगी।
कौमुदी जागरण-
उत्सव अनुमानतः शुरू में विशुद्ध लोकोत्सव रहा होगा क्योंकि संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रंथों में आश्विन पूर्णिमा को बिल्कुल भी महत्व नहीं दिया गया है।
आश्विन पूर्णिमा की रात में होने वाला यह उत्सव पालि ग्रंथों में कौमदीय-चातुमासनीय छन बतलाया गया है। यह उत्सव मौसम बदलाव के लिए मनाया जाता था। कामसूत्रकार ने इसी को कौमुदी जागरण लिखा है।
गहसूत्रों में अश्वयुज की पूर्णिमा को काफी महत्व दिया गया है। गहसूत्रों के द्वारा पता चलता है कि इन उत्सव के मौके पर उस वर्ण के लोग भड़कीले कपड़े पहनकर बड़े उल्लास के साथ अश्वयुजी उत्सव मनाते थे। पशुपति, इंद्र, अश्विन आदि देवताओं को खुश करने के लिए यज्ञ

हवन भी किए जाते थे तथा खीर का भोग लगाया जाता था।
आर्यशूर के द्वारा लिखित जातक माला में शिविराज्य की राजधानी में उस दिन नगर भर में चहल-पहल रहती थी। सड़को, चौमुहनियों में पानी का छिड़काव किया जाता था, उन्हे सजाया-संवारा जाता था। साफ-सुथरे धरातल पर फूल बिखेर दिए जाते थे। चारों तरफ झंडे, पताका तथा वन्दनवार लहराए जाते हैं। जगह-जगह पर नृत्य-नाटक, गीत वाद्य के जमघट लगे होते थे।
मात्स्य सूक्त के द्वारा सुवसंतक के दिन ही बसंत ऋतु का अवतरण होता है। इसी रोज मदन की पहली पूजा होती है। वसन्तावतार को आजकल वसन्तपंचमी कहा जाता है। सरस्वती कण्ठाभरण से पता चलता है कि सुवसंतक के दिन विलासिनियां कण्ठ में कुवलय की माला तथा कानों में दुष्प्राप्य नवआम्रमंजरी खोसकर गांव को रोशन कर देती है।
ऋतुसंहार से यह पता चलता है कि बंसत का मौसम आते ही विलासिनियां गर्म कपड़ो का भार उतार फैंकती थी। लाक्षा रंग अथवा कुंकुम से रंजित और सुगंधित कालगुरू से सुवासित हल्की लाल साड़िया पहनती थी। कोई कुसुंभी रंग से रंगे हुए दुकूल धारण करती थी तथा कोई-कोई कानों में नए कर्णिकार के फूल, नील अलकों में लाल अशोक के फूल तथा स्तनों पर उत्फुल्ल नवमल्लिका की माला पहनती थी।
गरुण पुराण के इन सुझावों से यह पता चलता है कि यह एक व्रत है जो समूह से संबंधित न होकर व्यक्ति से संबंधित है।

श्लोक (28)- सहकारभञ्जिका, अभ्यूषखादिका, बिसखादिका, नवपत्रिका, उदकक्ष्वेडिका, पाञ्चालानुयानम्, एकशाल्मली, कदम्बयुद्धानि, तास्ताश्च क्रीडा जनेभ्यो विशिष्टामाचरेयुः। इति संभूयक्रीड़ाः।।

अर्थ- इसके अंतर्गत दूसरे क्षेत्रीय क्रीड़ाओं का वर्णन किया जाता है-
सहकार भन्जिका, अभ्यूपखादिका, विसखादिका, नवपत्रिका, उदकक्ष्वेडिका, पान्चालानुयान, एकशाल्मलि कदम्बयुद्ध- इन स्थानीय तथा सार्वदेषिक क्रीड़ाओं में नागरक लोग अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार ही खेलें। सामूहिक क्रीड़ाओं का वर्णन खत्म होता है।

आचार्य वात्स्यायन ने बसंत के मौसम में खेली जाने वाली क्रीड़ाओं के नाम यहां पर बताए हैं। कामसूत्र की जयमंगला टीका में उनके अलावा उद्यान यात्रा, खलिल क्रीड़ा, पुष्पावचयिका, नवाम्रखादनिका और आम तथा माधवीलता का विवाह- इन क्रीड़ाओं को बसंत के मौसम में उसके बाद निदाध में खेलने का समर्थन किया गया है।

इसके अंतर्गत आचार्य वात्स्यायन एकांकी व ऐश्वर्यहीन नागरिकों के मनोरंजन का सुझाव पेश कर रहे हैं-

श्लोक (29)- एकचारिणश्च विभवसामर्थ्याद्।।

अर्थ- दुर्भाग्यवश नागरिकों से रहित नागरक अगर अकेले में विचार करता है तो वह अपनी ताकत के अनुकूल ही क्रीड़ा करे।

श्लोक (30)- गणिकाया नायिकायाश्च सखीभिर्नागरकैश्च सह चरितमेतने व्याख्यातम्।।

अर्थ- इसी तरह से एकांकिनी हो जाने पर गणिकाएं तथा नायिकाएं भी नागरिकों तथा सहेलियों के साथ मौसम संबंधी क्रीडा़एं करें।

श्लोक (31) अविभवस्तु शरीरमात्रो मल्लिकाफेनककषायमात्रपरिच्छदः पूज्याद्देशादागत कलासु विचक्षणस्तदुपदेशेने गोष्ठयां वेशोचिते च वृत्ते साधयेदात्मानमिति पीठमर्दः।।

अर्थ- इसके अंतर्गत उपनागरकों का परिचय देते हुए उनके आचरण के बारे में बताया गया है-

किसी सांस्कृतिक स्थान से आया हुआ कालाविचक्षण नागरिक अगर गरीब हो, उसके पास मल्लिका, फेनक तथा कषाय मात्र ही बाकी बचे हो तो वह नागरिकों की संभाओं, उत्सवों में जाकर और वेश्याओं के यहां जाकर उनको हितकर उपदेश देकर अपनी जीवीका कमानी चाहिए। उनका आचार्य बनकर पीठमर्द पदवी हासिल करनी चाहिए।

आचार्य वात्स्यायन के मुताबिक अमीर-गरीब समुदाय, सम्पन्न अथवा एकांकी सभी लोगों को मौसम संबंधी मनोरंजनों और उत्सवों में भाग लेना चाहिए। इससे भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का मूल उद्देश्य तथा स्वरूप आसानी से समझा जा सकता है।

कामसूत्र की गवाही से जान पड़ता है कि भारतीय संस्कृति तथा साहित्य में असुंदर तथा विद्रोह का भाव कहीं भी नहीं है। भारतीय नागरिक पुनर्जन्म तथा कर्मफल के सिद्धांतों को स्वीकार कर सांसरिक विधान के साथ सामन्जस्य बनाए रखने के लिए कोशिश करता है। वह दुख में भी असंतुष्ट अथवा फिक्रमंद नहीं हुआ करता क्योंकि उसकी मान्यता है कि मनुष्य अपने कामों का फल भोगने के लिए ही जन्म लेता है।

हमारी सभ्यता मनोविनोदों, उत्सवों, नृत्यो-नाटकों को सिर्फ मनोरंजन का साधन ही नहीं मानती बल्कि अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति का मुख्य साधन समझती है। यही वजह है कि वात्स्यायन ने हर व्यक्ति को चाहे वह जिस स्थिति का, जिस वर्ग अथवा रंग का हो, उत्सवों, मनोविनोदों में भाग लेने का सुझाव दिया है।

श्लोक (32)- भुक्तविभवस्तु गुणवान् सकलत्रो वेशे गोष्ठयां च बहुमतस्तदुपजीवी च विटः।।

अर्थ- जो व्यक्ति संपन्न नागरिकों के सभी सुखों का उपभोग कर चुका हो लेकिन किसी वजह हे विभवहीन हो गया हो और सभी नागरक गुणों से संपन्न है, कलावान है, गणिकाओं तथा नागरकों के समाज में लब्धप्रतिष्ठ है, वह वेश्याओं तथा नागरकों के संपर्क से जीविका चलाएं। ऐसा आदमी विट कहलाता है।

श्लोक (33)- एकदेशविद्यस्तु क्रीडनको विश्चास्यश्च विदूषकः। वैहासिको वा।

अर्थ- लेकिन जो लोग किसी कला अथवा विद्या में पूरी हासिल किए हो वह अधूरा कलाकार लोगों के बीच खिलौना बना रहता है। कदाचित वह विश्वस्त हुआ दो विदूषक कहलाएगा अथवा हंसाते रहने की वजह से वैहासिर भी कहा जाता है।

श्लोक (34)- एते वेश्यानां नागरकाणां च मन्त्रिणः सन्धिविग्रहनियुक्ताः

अर्थ- ऐसे लोग वेश्याओं तथा नागरिकों के बीच संधि-विग्रहिक बनते हैं।

श्लोक (35)- तैर्भिक्षुक्यः कलाविदग्धा मुण्डा वृषल्यो वृद्धगणिकाश्च व्याख्याताः।।

अर्थ- विट-विदूषक की तरह कला निपुण भिक्षुकी नायक तथा नायिका के बीच संधि-विग्रहिक बनकर जीवन बिता सकती है।

उपर्युक्त 3 सूत्रों द्वारा आचार्य वात्स्यायन ने पीठमर्द, विट, विदूषक और इन्ही की तरह भिक्षुणी, बांझस्त्री, विधवा, बूढ़ी वेश्या आदि के जीवनयापन का विधान बताया है।

सुख-संपन और निर्धन नागरिकों के इस वर्गीकरण से वात्स्यायन कालीन समाज व्यवस्था का सचित्र परिचय प्राप्त होगा। इसके अंतर्गत कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं किया गया है कि उच्च वर्ण के लोग ज्यादा समृद्ध होते थे और नीच वर्ण के लोग कम।

ऐसा लगता है कि समृद्ध होने के बाद श्रेष्ठी अथवा सामन्त पदवी हासिल हो जाती थी, शुद्र पद विलीन हो जाता था। ब्राह्मण सिर्फ वेद पाठी ही नहीं होते थे बल्कि देश-देशान्तर का व्यापार करके श्रेष्ठि भी बन जाते थे। क्षत्रियों की भी बात यही है कि वे सिर्फ राजा या योद्धा ही नहीं होते थे बल्कि उच्चकोटि के व्यवसायी तथा सेठ भी होते थे।

मृत्षकटिक नाटक की गवाही के अंतर्गत जाना जाता है कि चारुदत ब्राह्मण होते हुए भी श्रेष्ठि-चत्वर में वास करता है तथा सभी कलाओं का समादरण करने वाला उत्तम नागरिक है।

गरीब हो जाने पर भी वसन्तसेना जैसी अनिन्ध सुंधरी, गणिका तथा सभी नागरिकों के प्रेम तथा श्रद्धा का भाजन बना रहता है।

आचार्य वात्स्यायन द्वारा बताई गई विट की परिभाषा का मनुष्य मृच्छकटिक का एक दूसरा ब्राह्मण है जो विट कहा जाता है। राजा के साले की चापलूसी करता है, गणिकाओं का सम्मान करता है और उन्हे खुश रखता है।

श्लोक (36)- ग्रामवासी च सजातान्विचक्षणान् कौतूहलिकान् प्रोत्साह्या नागरकजनस्य वृत्तं वर्णयञ्श्रद्धां च जनयंस्तदेवानुकुर्वीत। गोष्ठीश्च प्रवर्तयेत्। संगत्या जनमनुरञ्जयेत। कर्मस च साहाय्येन चानुगृह्णीयात्। उपकारयेच्च। इति नागरकवृत्तम्।।

अर्थ- इसके अंतर्गत गांव के लोग नागरक के वृत्त का वर्णन करते हैं-

अगर नागरक गांव में जीवनयापन करने या किसी दूसरे मकसद को पूरा करने के लिए निवास करता है तो संजातीय, बुद्धिमान तथा जादू, खेल-तमाशा जानने वाले लोगों को रोचक घटनाएं सुनवाकर अपना भक्त बना लें तथा नागरक जीवन बिताने के लिए उन्हे प्रोत्साहित करें।

उनके मनोरंजन के लिए उत्सवों और यात्राओं का आयोजन किया जाए, अपने संपर्क से उन्हें प्रमुदित बनाकर रखें। उनके काम में सहायता प्रदान करें तथा उन पर अनुग्रह करता रहें। यहां पर नागरकवृत्त का प्रकरण समाप्त होता है।

नागरकवृत्त से इस बात का पता चलता जाता है कि उस समय की भारतीय प्रजा, ऐश्वर्य, समृद्धि तथा पौरुष संपन्न थी। सुंदरता तथा सुकुमारता की रक्षा करने में हमेशा जागरुक रहती थी। योग तथा भोग, प्रवृत्ति तथा निवृत्ति का सामन्जस्य तथा संतुलन बनाए रखने में पूरी तरह काबिल और सावधान थी। उसका अपना भी दृष्टिकोण व जीवन दर्शन था जिसके द्वारा वह इन्द्रियों की वृत्ति को पाशविकता की तरफ उन्मुख नहीं होने देती थी।

श्लोक (37)- नात्यंत संस्कृतेनैव नात्यंत देशभाषया। कथां गोष्ठीषु कथयंल्लोके बहुमतो भवेत्।।

अर्थ- इसके अंतर्गत गोष्ठियों में भाषा तथा संभाषण संबंधी नियमों की व्याख्या करते हैं-

सभाओं तथा गोष्ठियों में न सिर्फ संस्कृत में ही बोला जाए और न ही सिर्फ भाषा में। ऐसा करने से वक्ता सर्वमान्य तथा सर्वसम्मानित नहीं हो सकता है।

श्लोक (38)- या गोष्ठी लोकविद्विष्टा या च स्वैरविसर्पिणी. परहिंसात्मिका या च न तामवतरेद्वधः।।

अर्थ- जिस गोष्ठी में जलने वाले लोग रहते हों तथा जहां पर स्वच्छंद कार्यवाही होती हो और दूसरों पर इल्जाम लगाए जाते हो या दूसरों को नुकसान पहुंचाने की कोशिश की जाती हो उस गोष्ठी में बुद्धिमान व्यक्ति को नहीं जाना चाहिए।

श्लोक (39)- लोकचित्तानुवर्तिन्या क्रीडामात्रैकाकार्यया। गोष्ठया सहचरन्विद्वांल्लोके सिद्धि नियच्छति।।

अर्थ- जो लोग इस प्रकार की गोष्ठियों से ताल्लुक रखते हों, जो जनरुचि का प्रतिनिधित्व करते हो और जिस जगह पर सिर्फ विनोदों या मनोरंजनों का ही माहौल रहता हो वह व्यक्ति कामयाबी और ख्याति को प्राप्त कर सकता है।

आचार्य वात्स्यायन के भाषा संबंधी विचार बहुजनहिताय है। वह जन समाज के बीच न तो कठोर पाण्डित्य चाहता है और न ही गंवारपन। उनकी भाषा नीति मध्यम वर्ग का अवलंबन करती है। वात्स्यायन द्वारा हजारों साल पहले निर्धारित की हुई भाषानीति आज के भाषा विवाद के लिए एक उपाय है।

आचार्य वात्स्यायन के समय में संस्कृतनिष्ठ, सुशिक्षित अथवा साहित्य की भाषा रही है तथा प्राकृत जनभाषा रही है। संस्कृत के साथ-साथ जनभाषा में भी साहित्य का प्रणयन उस समय होता रहा है।

आचार्य वात्स्यायन ने नियम बताया है कि सभाओं तथा गोष्ठियों में साधारणतयः शाम का ही उपयोग किया जाए जो कि आसान सुबोध होने के साथ ही साहित्यिक गुणों से भी संपन्न हो। गोष्ठियों में भाग लेने, भाषण देने का आयोजन ख्याति तथा लोकप्रियता हासिल करना है।

बुद्धिमान लोगों को इस प्रकार के उत्सवों में जाना चाहिए जो लोकचित्तानु वर्तिनी हों। जहां अपने दिल के बोझ को उतारकर दिल और दिमाग के लिए बौद्धिक खुराक हासिल की जा सके। आनन्ददायक सौहार्दमय तथा स्नेहमय माहौल हो। ऐसे माहौल मे संपन्न हर क्रिया, हर विचार तथा भावना फलवती हो सकती है। इसके साथ ही कामयाबी और ख्याति भी अनुगमन करती है।

श्लोक- इति श्री वात्स्यायनीये कामसूत्रे साधारणे, प्रथमेऽधिकरणे नागरक वृत्तं चतुर्थोऽध्याय।।

वात्स्यायन का कामसूत्र हिन्दी में

भाग 1 साधारणम्

अध्याय 5 नायकसहायदूतीकर्मविमर्शः

श्लोक (1)- कामश्चतुर्षु वर्णेषु सवर्णतः शास्त्रतश्चानन्यपूर्वायां प्रयुज्यमानः पुत्रीयो यशस्यो लौकिकश्च भवति।।

अर्थ- इसके अंतर्गत पुरुष तथा स्त्री के दास और दासियों के करने वाले कार्यों को बताया गया है। इसमें सबसे पहले अपनी जाति की स्त्री से रीति-रिवाज के अनुसार विवाह की जरूरत पर रोशनी डाली जाएगी।

क्षत्रिय, ब्राहमण, शुद्र और वैश्य वर्ग के अनुसार अपनी ही जाति की स्त्री से विवाह करना चाहिए। इससे उनकी जो संतान पैदा होती है वह संसार में उनका नाम रोशन करती है। आचार्य वात्स्यायन के अनुसार इस बात के दो अर्थ निकलते हैं- पहला- अपनी ही जाति की स्त्री से विवाह करना और दूसरा संतान को पैदा करके लोकधर्म को निभाना।

इसलिए भारतीय जाति व्यवस्था में विवाह पद्धति पर बहुत ही नियंत्रण रखा जाता है। बच्चे के जन्म लेने के बाद के अधिकारों को विकसित और परिपक्व बनाने के लिए पूरी शिक्षा-दीक्षा तथा अच्छे माहौल की जरूरत पड़ती है। लेकिन अगर जन्म से ही उन गुणों को पाने की कोशिश नही की जाती तो खानदानी परंपरा का और परिवार के माहौल का असर बच्चे पर ज्यादा नहीं पड़ता।

आचार्य वात्स्यायन की कही बातें यहां पर बिल्कुल ठीक प्रतीत होती है। अगर अपनी पत्नी से संभोग करके संतान पैदा की जाए तो यह संसार की मर्यादा के अंतर्गत आता है।

श्लोक (2)- तद्विपरीत उत्तमवर्णासु परपरिगृहीतासु च। प्रतिषिद्धोऽवरवर्णास्वनिरवसितासु। वेश्यासु पुनर्भूषु च न शिष्टो न प्रतिषिद्धः। सुखार्थत्वात्।।

अर्थ- इसमें विवाह के समय क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए इस बात को बताया गया है-

अपनी से ऊंची जाति या पराई स्त्री से संभोग की इच्छा शास्त्रों के अनुकूल नहीं है। इसी तरह से अपने से नीची जाति की स्त्रियों सें संभोग की इच्छा रखना गलत है। परंतु वेश्याओं तथा पुनर्भु स्त्रियों से संभोग करना सहीं है क्योंकि उनके साथ जो संभोग क्रिया की जाती है वह सिर्फ शरीर की आग को शांत करने के लिए होती है न कि संतान आदि पैदा करने के लिए।

आचार्य वात्स्यायन अपनी ही जाति में विवाह करने का ही समर्थन करते हैं क्योंकि वह

दोगली जाति पैदा करने को गलत ठहराते हैं। आज के समय में आधुनिक विज्ञान भी इस बात को मानने लगा है कि दो अलग-अलग जातियों के जीवों के आपस में मिलने से एक तीसरे प्रकार के जीव की उत्पत्ति होती है।

श्लोक (3)- तत्र नायिकास्तिस्त्रः कन्या पुनर्भूर्वेश्या च इति।।

अर्थ- 3 प्रकार की स्त्रियां होती है कन्या, पुनर्भु और वेश्या।

आचार्य वात्स्यायन के मुताबिक इन तीनों प्रकार की स्त्रियों से पुरुष को प्रेम संबंध जोड़ने चाहिए। पहली स्त्री अर्थात कन्या को सबसे अच्छा माना जाता है। पुनर्भु स्त्री को उससे नीचा और वेश्या स्त्री को सबसे नीचा माना गया है। अब सवाल यह उठता है कि आचार्य वात्स्यायन नें पुनर्भु और वेश्या को कन्या से नीचा क्यों बताया है। जिस लड़की की शादी नहीं होती उसे कन्या कहा जाता है। जो लड़की शादी से पहले किसी पुरुष के साथ संभोग करती है तो उसे पुनर्भु तथा कई पुरूषों के साथ संबंध बनाने वाली स्त्री को वेश्या कहा जाता है।

इससे एक बात पूरी जाहिर हो जाती है कि आचार्य वात्स्यायन के समय में भी कुंवारी युवतियों को भी अपनी पसंद के युवक से विवाह करने की पूरी छूट थी। हर युवक अपनी खूबियों के बल पर युवती को पाने की इच्छा रखता था। आचार्य वात्स्यायन के मुताबिक विवाह में बंधने से पहले युवक तथा युवती को आपसी प्रेम संबंध द्वारा एक-दूसरे से परिचित हो जाना चाहिए।

जिस युवक में सारे गुण होते हैं ऐसे युवक के लिए कन्या स्त्री उससे नीचे युवक के लिए पुनर्भु तथा सबसे नीचे युवक के लिए वेश्या स्त्री को चुनने का मकसद सही होता है। सबसे पहले आपस में प्रेम बढ़ाना, फिर एक-दूसरे पर भरोसा रखना और फिर विवाह करना आचार्य वात्स्यायन के मुताबिक सही है।

आचार्य वात्स्यायन ने इसमें युवक की पात्रता के अनुकूल वेश्या नायिका का विधान बनाया है। इसका मतलब यह है कि बुरे युवक के लिए बुरी युवती। इतिहास में वेश्य़ाओं की स्थिति और वह कितनी पुरासे समय से चली आ रही है यह बताया गया है। सभी पुराने ग्रंथों में वेश्याओं के बारे में लिखा हुआ मिलता है। इसी के साथ ही वेश्याओं के संबंध में अलग ग्रंथ भी बने हुए हैं।

वेश्याओं को पुराने समय में समाज का एक जरूरी अंग माना जाता था। पहले के समय में वेश्याओं को इस प्रकार की शिक्षा दी जाती थी कि शारीरिक और मानसिक विकास कैसे होता है। लेकिन दूसरी स्त्रियों को इस प्रकार की शिक्षा से दूर रखा जाता था। पुराने समय से ही वेश्याएं हर चीज में निपुण होती थी। यहीं नहीं ऊंची जाति की स्त्रियां भी इनकी शिक्षा-दीक्षा से लाभ उठाया करती थी।

आचार्यों नें कामसूत्र के अलावा दूसरे ग्रंथों में भी कई प्रकार की स्त्रियों के लक्षण बताए हैं-

1- चित्रिणी

2- परकीया

3- सामान्या

4- स्वकीया

5- पदमिनी

6- हस्तिनी

7- शंखिनी

8- मुग्धा

9- ज्ञातयौवना

10- मध्यमा

11- प्रौढ़ा

12- आरूढ़ यौवना मुग्धा

13- नवलअनंग

14- लज्जाप्रिया मुग्धा

15- लुब्धपत्ति प्रौढ़ा

16- प्रगल्भव चना मध्या

17- आक्रमिता प्रौढ़ा

18- सुरतविचित्रा मध्या

19- विचित्र-विभ्रमा प्रौढ़ा

20- समस्तरत कोवि प्रौढ़ा

21- कलहातरिता

22- धीरा

23- उत्कण्ठिता

24- धीरा-धीरा

25- स्वाधीन पतिका

26- प्रादुर्भतमनोभवा मध्या

27- सम्सयाबन्धु

28- खंडिता

29- स्वयंदूतिका

30- प्रोषितापतिका

31- कुलटा

32- लक्षिता

33- लघुमानवती

34- मुदिता

35- अयुशयना

36- मध्य मानवती

37- अनूढ़ा

38- गुरू मानवती

39- रूपग्रर्विता

40- ग्रर्विता

41- अन्य संभोग दुःखिनी

41- कुलटा

42- कनिष्ठा

43- अदिव्या

44- वचनविदग्धा

45- क्रियाविदिग्धा

46- दिव्या

46- दिव्या दिव्या

47- कामगर्विता

48- मध्यमा

49- उत्तमा

50- प्रेमगर्विता

51- रूपगर्विता

श्लोक (4)- अन्यकारणवशात्परपरिगृहीतापि पाक्षिकी चतुर्थीति गोणिकापुत्रः।।

अर्थ- इसके अंतर्गत बहुत से आचार्यों द्वारा बताई गई स्त्रियों का उल्लेख किया जाता है। बहुत से कारणों से पराई स्त्री को भी चौथी स्त्री बनाया जा सकता है।

श्लोक (5)- य यदा मन्यते स्वैरिणीयम्।।

अर्थ- जिन कारणों से पराई स्त्रियों को नायिका बनाया जा सकता है वह निम्नलिखित है- पुरुष जब इस बात को समझ ले कि पराई स्त्री पतिव्रता नहीं होती है।

श्लोक (6)- अन्यतोऽपि बहुशो व्यवसित चारित्रा तस्यां वेश्यायामिव गमनमुत्तमवर्णिन्यामपि न धर्मपीड़ां करिष्यति पुनर्भुरियम्।।

अर्थ- आचार्य स्वैरिणी पराई स्त्री से संबंध बनाने के औचित्य को बताते हैं-
बहुत से लोगों द्वारा उनके चरित्र को पहले से ही खराब किया जा चुका है इसीलिए अगर वह अच्छी जाति की भी हो तब भी उसके साथ संभोग क्रिया करना वेश्या के अभिगमन की तरह धर्म के विरुद्ध नहीं होगा।

श्लोक (7)- अन्यपूर्वावरुद्धा नात्र शगंस्ति।।

अर्थ- वह स्त्री पहले ही दूसरे पुरूषों के साथ नाजायज संबंध बनाती है इसलिए उससे संबंध बनाने में किसी तरह की शंका नहीं करनी चाहिए।

श्लोक (8)- पति वा महान्तीमीश्चरमस्मदमित्रसंसृष्टमियमवगृह्म प्रभुत्वेन चरति। सा मया संसृष्टा स्नेहादेनं व्यावर्तीयिष्यति।।

अर्थ- यदि उस स्त्री का पति नामी-गिरामी हस्तियों में आता है और मेरे दुश्मन से उसका संबंध है तो उस स्त्री से मेरा संबंध हो जाने पर वह मेरे मोह में पड़कर अपने पति का मेरे दुश्मन से संबंध तुड़वा देगी।

श्लोक (9)- विरसं वा मयि शक्तमपकर्तुकामं च प्रकृतिमापादयिष्यति।।

अर्थ- इसका अर्थ यह है कि मेरे पुराने दोस्त जो कि किसी कारण से मेरे दुश्मन बन गए हो और मुझे नुकसान पहुंचा रहे हो तो वह स्त्री उससे मेरी दुबारा से दोस्ती करा देगी और यदि दोस्त न भी बना पाई तो उसके द्वारा मुझे किसी प्रकार की हानि भी नहीं होने देगी।

श्लोक (10)- तया वा मित्रीकृतेन मित्रकार्यममित्रप्रतीघातमन्यद्वा दुष्प्रतिपादकं कार्य साधयिष्यामि।।

अर्थ- अर्थात उससे संबंध बन जाने पर उसके द्वारा दोस्ती या दुश्मनी के कामों को या किसी भी मुश्किल काम को मैं पूरा कर लूंगा।

श्लोक (11)- संसृष्टो वानया हत्वास्याः पतिमस्मद्धाव्यं तदैश्चर्यमेवमधिगमिष्यामि।।

अर्थ- नहीं तो उस स्त्री से मेरे संबंध बन जाने पर उसके पति को मारकर उसके द्वारा छीनी गई मेरी सम्पत्ति को मैं हासिल कर लूंगा।

श्लोक (12)- निरत्ययं वास्या गमनमर्थानुबद्धम्। अहं च निःसारत्वात्क्षीणवृत्त्युपायः। सोऽहमनेनोपायेन तद्धनमतिमहदकृच्छ्रादधिगमिष्यामि।।

अर्थ- धन के लालच में पराई स्त्री के साथ शारीरिक संबंध बनाना कोई बुरी बात नहीं है क्योंकि मैं गरीब हूं, मेरे पास कमाई का कोई साधन नहीं है। इसलिए मैं इस उपाय से उस स्त्री के धन को बहुत ही आसानी से हासिल कर लूंगा।

श्लोक (13)- मर्मज्ञा वा मयि दृढमभिकामा सा मामनिच्छन्तं दोषविख्यापनेन दूषियिष्यति।।

अर्थ- या वह मुझ पर पूरी तरह से मोहित है, मेरे राजों को जानती है, अगर मैं उससे सही तरह से बात न करूं तो वह मेरी बुराईयों को सबको बताकर मुझ बदनाम कर सकती है इसलिए मेरे लिए यह ही सही है कि मै उसके साथ संबंध बना लूं।

श्लोक (14)- असद्भूतं वा दोषं श्रद्धेयं दुष्परिहारं मयि क्षेप्सयति येन में विनाशः स्यात्।।

अर्थ- या मुझसे खफा होकर वह मुझ पर कोई ऐसा संगीन आरोप लगा दें कि मुझे उससे बचना मुश्किल ही हो जाए तब तो मेरा सर्वनाश ही हो जाएगा। इसलिए उसके साथ संबंध बनाना ही मेरे लिए सही है।

श्लोक (15)- आयतिमन्तं वा वश्यं पतिं मत्तो विभिद्य द्विषतः संग्राहयिष्यति।।

अर्थ- या वह अपने प्रभावशाली पति को मेरे खिलाफ भड़काकर मेरे दुश्मनों के साथ मिला देगी। इसलिए उसके साथ संबंध बनाना ही सही है।

श्लोक (16)- स्वयं वा तैः सह संसृज्येत। मदवरोधानां वा दूषियाता पतिरस्यास्तदस्याहमपि दारानेव दूषयन्तप्रतिकरिष्यामि।।

अर्थ- या तो वह स्वयं ही मेरे दुश्मनों के साथ मिल जाए या उसका पति मेरी पत्नी को यह सोचकर फंसाना चाहे कि इसने मेरी पत्नी के साथ गलत संबंध बनाए हैं तो मैं भी इसकी पत्नी के साथ ऐसा ही करूंगा। इसलिए इसके साथ संबंध बनाना ही उचित है।

श्लोक (17)- यामन्यां कामयिष्ये सास्या वशगा। तामनेन संक्रमेणाधिगमिष्यामि।।

अर्थ- या जिस दूसरी स्त्री को मैं चाहता हूं वह उसके वश में है और इसकी वजह से मै उसे हासिल कर लूंगा।

श्लोक (18)- कन्यामलभ्यां वात्माधीनामर्थरूपवतीं मयि संक्रामयिष्यति।।

अर्थ- या फिर जिस धनवान, खूबसूरत युवती से मैं शादी करना चाहता हूं वह मुझे बिना इसकी सहायता के नहीं मिल सकती।

श्लोक (19)- इति साहसिक्यं न केवलं रागादेव। इति परपरिग्रहगमनकारणानि।।

अर्थ- किसी खास कारण के बिना सिर्फ स्त्री के शरीर को पाने के लिए इतने ज्यादा खतरे उठाना बिल्कुल ठीक नहीं है। यहां पर पराई स्त्री के साथ संबंध बनाने का अध्याय समाप्त होता है।

श्लोक (20)- एतैरेव कारणैर्महामात्रसंबद्धा राजसंबंद्धा वा तत्रैकदेशचारिणी काचिदन्या वा कार्यसंपादिनी विधवा पञ्चमीति चारायणः।।

अर्थ- आचार्य चारायण के अनुसार कन्या, पुनर्भु, वेश्या और पराई स्त्री के अलावा विधवा पांचवीं नायिका है जो राजा, मंत्री और उनके घरवालों के संबंध बना लें या दूसरी कोई ऐसी विधवा स्त्री है जो सफलतापूर्वक अपने सारे कार्यों को कर सके।

श्लोक (21)- सैव प्रव्रजिता षष्ठीति सुवर्णनाभः।।

अर्थ- आचार्य सुवर्णनाभ के मुताबिक परिवाजिका विधवा छठे प्रकार की नायिका होती है।

श्लोक (22)- गणिकाया दुहिता परिचारिका वानन्यपूर्वा सप्तमीति घोयकमुखः

अर्थ- आचार्य घोटकमुख दासी को सातवें प्रकार की स्त्री बताते हैं।

श्लोक (23)- उत्क्रान्तबालभवा कुलयुवतिरुपचारान्यत्वादष्टमीति गोनर्दीयः।।

अर्थ- आचार्य गोनर्दीय के मुताबिक जो युवती बचपन को पार करके जवानी में पहुंचती है और जिसे पाने में बहुत मेहनत करनी पड़ती है वह आठवें प्रकार की नायिका होती है।

श्लोक (24)- कार्यान्तराभावादेतासामपि पूर्वास्वेवोपलक्षणम्, तस्माच्चतस्त्र एव नायिका इति वात्स्यायनः।।

अर्थ- चारायण से लेकर गोनर्दीय तक जिन आचार्यों नें 4 तरह की नायिकाओं के बारे में बताया है वह सब कन्या, पुनर्भू, वेश्या तथा पराई स्त्री के अन्तर्गत समाहित है उनके अलग नहीं है। इसलिए सिर्फ 4 प्रकार की नायिकाएं है।

आचार्य वात्स्यायन ने गोणिकापुत्र के दिए हुए मत को स्वीकार करके बाकी दूसरे आचार्यों को बहुत ही चतुराई से गलत साबित कर दिया है।

श्लोक (25)- भिन्नत्वात्तृतीया प्रकृतिः पञ्चमीत्येके।।

अर्थ- आचार्यों के अनुसार पुरुष तथा स्त्री से अलग तीसरे प्रकृति अर्थात (किन्नर) पांचवीं नायिका है।

इस तीसरी प्रकृति (किन्नर) को पोटा, क्लीव, नपुंसक, वर्षधर, षण्व, उभय-व्यंजन आदि के नामों से भी जाना जाता है। वैसे नपुंसक और हिजड़ों में काफी फर्क होता है।

लिंग में पूरी उत्तेजना न होने और वीर्य के पर्याप्त मात्रा में न होने के कारण जो पुरुष स्त्री के साथ संभोग करने में असमर्थ रहता है उसे नपुंसक कहा जाता है। कुछ पुरुष जन्म से ही नपुंसक होते है और कुछ अपनी जवानी की गलतियों के कारण हो जाते हैं। नपुंसक को क्लीव भी कहा जाता है।

श्लोक (26)- एक एव तु सार्वलौकिको नायकः। प्रच्छन्नस्तु द्वितीयः। विशेषालाभात्। उत्तमाधममध्यमतां तु गुणागुणतो विद्यात्। तांस्तुभयोरपि गुणागुणान्वैशिकै वक्ष्यामः।।

अर्थ- इसमें नायिकाओं के लक्षण बताने के बाद पुरुष के लक्षण बताए गए है-
स्त्री के जीवन में सबसे बढ़कर जो पुरुष होता है वह उसके पति के रूप में ही होता है। इसके अलावा दूसरा पुरुष उसे कहा जाता है जो सिर्फ शारीरिक सुख के लिए उसके साथ संबंध बनाता है। इनमें से गुण तथा दोषों के ज्यादा या कम होने के अनुसार सबसे अच्छे, मध्यम और नीच पुरुष कहलाते हैं।

श्लोक (27)- अगम्यास्तवेवैताः- कुष्ठन्युन्मत्ता पतिता भिन्नरहस्या प्रकाशप्रार्थिनी गतप्राययौर्वनातिश्वेतातिकृष्णा दुर्गन्धा संबन्धिनी सखी प्रव्रजिता संबंन्धिसखिश्रोत्रियराजदाराश्च।।

अर्थ- इसके अंतर्गत 13 तरह की अगम्या स्त्रियों (जिन स्त्रियों के साथ संभोग नहीं किया जा सकता) के बारे में बताया गया है यह स्त्रियां है- पागल, कोढ़िन, बेशर्म, ज्यादा उम्र की, शरीर से बदबू आने वाली, किसी तरह के रिश्ते में लगती हो, ज्यादा सफेद रंग की या ज्यादा काली रंग की, बचपन की सहेली, जो किसी राज को न छुपा पाती हो, सन्यासिनी।

श्लोक (28)- दृष्टपञ्त्रपुरुषा नागम्या काचिदस्तीति बाभ्रवीयाः।।

अर्थ- बाभ्रवीय आचार्यों के मुताबिक अगर कोई स्त्री 5 पुरूषों के साथ संबंध बनाती है तो वह अगम्या स्त्री नहीं है।

श्लोक (29)- संबंधिसखिश्रोत्रियराजदारवर्जमिति गोणिकापुत्रः।।

अर्थ- बाभ्रवीय आचार्य के मत में आचार्य गोणिकापुत्र ने अपना एक मत और जोड़कर उसका समर्थन करते हैं- 5 पुरूषों के साथ संबंध बनाने के बाद भी रिश्तेदार, मित्र, ब्राह्मण और राजा की स्त्री अगम्य है।

आचार्य वात्स्यायन ने जिस तरह की 13 स्त्रियों के नाम बताए हैं वह धार्मिक, सामाजिक, शारीरिक और मानसिक दृष्टि से सबसे ज्यादा निषिद्ध है। शरीर विज्ञान तथा वंशानुक्रम-विज्ञान से अगर देखा जाए तो पागल, कोढ़िन, शरीर से बदबू आने वाली, ज्यादा काली युवती या ज्यादा गोरी लड़की से संभोग करना भयंकर तथा वंश परंपरागत विकारों को जानबूझकर

बुलावा देना है। ज्यादा उम्र की स्त्री के साथ संभोग करना दिल और दिमाग तथा शरीर को नुकसान पहुंचाना ही होता है।

इसके साथ बड़ी कोशिश से रक्षा करने लायक, वीर्य का नाश करने के समान ही है। अगर धार्मिक दृष्टि से देखा जाए तो अपने कुल या गौत्र की स्त्री, दोस्त की पत्नी, राजा की पत्नी तथा सन्यासिनी के साथ संभोग करना जानवर पंती समझी जाती है अर्थात जो पुरुष ऐसा करता है वह मनुष्य न कहलाकर जानवर कहलाने के लायक ही है।

श्लोक (30)- सहपांसुक्रीडितमुपकारसंबंद्धं समानशीलव्यसनं सहाध्यायिनं यश्चास्य मर्माणि रहस्यानि य विद्यात्, यस्य चायं विद्याद्वा धात्रपत्यं सहसंवृद्ध मित्रम्।।

अर्थ- इसमें यह बताया गया है कि कैसे लोगों को अपना प्रिय मित्र बनाना चाहिए जैसे बचपन में जिनके साथ पूरे दिन खेलते हों, जिस पर किसी तरह का एहसान किया हो, स्वभाव या गुण आदि में जो बिल्कुल अपनी ही तरह हो, जिससे किसी तरह के राज को ना छुपाया गया हो और जो एक ही मां की गोद में खेलकर पले-बढ़े हों।

श्लोक (31)- पितृपैतामहमविसंवादकमद्दष्टवैकृतं वश्यं ध्रुवमलोभशीलमपरिहार्यममन्त्रविस्त्रावीति मित्रन्संपत्।।

अर्थ- जिससे खानदानी प्यार-दुलार चला रहा हो, जिन लोगों से लड़ाई-झगड़ा न होता हो, जो स्वभाव से चंचल न हो, लालची न हो, किसी के बहकावे में न आए और किसी के द्वारा बताई गई बातों को दूसरों के सामने न खोले। इस प्रकार के लोगों के साथ दोस्ती रखनी चाहिए।

श्लोक (32)- राजकनापितमालाकारगान्धिकसौरिकभिक्षुकगोपाल कताम्बूलिकसौवर्णिकपीठमर्दविटविदूषकादयो मित्राणि। तद्योषिन्मित्राश्च नागरकाः स्युरिति वात्स्यायनः।।

अर्थ- इनके अलावा कुछ कारोबार से संबंध रखने वाले लोग भी नायक के दोस्तों में शामिल हो सकते हैं जैसे धोबी, नाई, माली, भिखारी, दूध वाला, तमोली, सुनार आदि। आचार्य वात्स्यायन के मुताबिक धोबी, नाई, माली आदि की पत्नियों को भी दोस्त बनाया जा सकता है क्योंकि यह

पुरूषों से ज्यादा नायक की ज्यादा मदद कर सकती है। क्योंकि इनका संबंध महल में रहने वाली रानियों से होता है और यह किसी भी समय उनके महल में आ जा सकती है।

श्लोक (33)- यादुभयोः साधारणमुभयत्रोदारं विशेषतो नायिकायाः सुविस्त्रब्धं तत्र दूतकर्म।।

अर्थ- जो लोग स्त्री और पुरुष दोनों के लिए ही मन में अच्छी भावना रखते हो खास करके स्त्री का ज्यादा विश्वास पात्र हो वह दूतकार्य के लिए बिल्कुल ठीक रहता है।

श्लोक (34)- पटुता धष्टार्यमिगिंताकारज्ञता प्रतारणकालज्ञता विषहृयबुद्धित्वं लध्वी प्रतिपत्तिः सोपाया चेति दूतगाणाः।।

अर्थ- बातचीत में चतुराई, ढीटपना, इशारों को समझना, नायिका को किस समय बहकाया जा सकता है, इसका काल ज्ञान, संकट अथवा शक महसूस होने पर जल्द ही फैसला लेने वाली आदि दूत के गुणों में शुमार होते हैं।

श्लोक (35)- भवति चात्र श्लोकः- भवति चात्र श्लोकः- आत्मवान्मित्रवान्युक्तो भावज्ञो देशकालवित्। अलभ्यामप्ययत्नेन स्त्रियं संसाधयेन्नरः।।

अर्थ- इस विषय के बारें में एक पुराना श्लोक है-
जो पुरुष आत्मनिर्भर तथा दोस्त बनाने वाले गुणों से संपन्न होता है, जो वृत्त में निपुण होता है, स्त्रियों के मन के भावों को परखने वाला होता है, स्थान और समय के महत्व को समझता है, वही अलभ्य स्त्री को भी बहुत आसानी से पा लेता है।

इस अध्याय का नाम दूतीकर्म विशेष है लेकिन दूतीकर्म से ज्यादा इसमे दूतकर्म का ही ज्यादा इस्तेमाल किया गया है। नायिका को नायक से मिलाने में दूती जितनी ज्यादा मदद कर सकती है उतनी दूत नहीं कर सकता। आचार्य वात्स्यायन ने वैसे तो दूसरे काम-शास्त्र के आचार्यों की राय को सही बताते हुए दूतकर्म का कार्य करने वाले पुरूषों की पत्नियों को भी दूतीकार्य में सहयोग करने की राय दी है, लेकिन वह सारी बातें समीचीन इसलिए नहीं जान पड़ती कि जितने प्रकार के दूत बताए गए हैं उन सभी की पत्नियां दूतीकार्य के लिए सही नहीं रहती। पुराने इतिहास में स्त्री और पुरुष के बारे में प्रेम के बारे में पढ़ने पर ज्ञात होता है कि स्त्री और पुरुष के बीज क्लेश पैदा कराने वाले कार्यों में स्त्रियां ही ज्यादा सफल साबित हुई है पुरुष दूत नहीं।

इस अध्याय को जो नाम दिया गया है उसके अनुसार इस विषय का विवेचन न के

बराबर हुआ है। विषयांतर का समावेश समीक्षक दिमाग में उलझने पैदा करता है। इस अध्याय में दूतीकार्य को छुआ तक नहीं गया है बल्कि इसके मुकाबले दूसरे ग्रंथों में इस विषय के बारें में पूरी जानकारी मिलती है।

आचार्य वात्स्यायन ने एक पुराने श्लोक को उदाहरण के रूप में बताते हुए कहा है कि जिस पुरुष के पास आत्मबल और बहुत सारे भरोसेमंद मित्र होते हैं और वह नागरकवृत्ति में निपुण तथा मन के भावों को समझने वाला होता है। वह अनायास, अलभ्य स्त्रियों को हासिल कर सकता है।

इस अध्याय के अंतर्गत नायक पुरुष के जो गुण और विशेषताएं बताई गई है वह सिर्फ अलम्भ स्त्रियों को हासिल करने में ही कामयाबी नहीं दिलाती बल्कि जीवन के हर क्षेत्र और काम-काज में पूरी तरह से कामयाब बनाती है।

जो पुरुष कायर नहीं होता उसी को आत्मवान कह सकते हैं। जिसका दिल साफ होता है वही सच्चा मित्र बन सकता है। मन के भावों को समझने वाला वही व्यक्ति हो सकता है जिसके अंदर समीक्षात्मक दिमाग तथा मनौवैज्ञानिक नजरिया हो और व्यवहारकुशल व्यक्ति ही देशकालवित हो सकता है।

इस श्लोक से यही पता चलता है कि काम-शास्त्र का ज्ञाता पुरुष छिछोरा, लफंगा और मनचला नहीं होता बल्कि कुलीन, समझदार, लोकप्रिय, स्वाभिमानी, आत्मनिष्ठ और कलाकुशल होता है।

श्लोक- इति श्री वात्सयायनीये कामसूत्रे साधारणे प्रथमेऽधिकलणे पंचमोऽध्यायः प्रथम अधिकरण (साधारण) समाप्त।